शक्ति-तत्व

('शक्ति' के दार्शनिक तत्व सम्बन्धी निबन्धों का संग्रह)

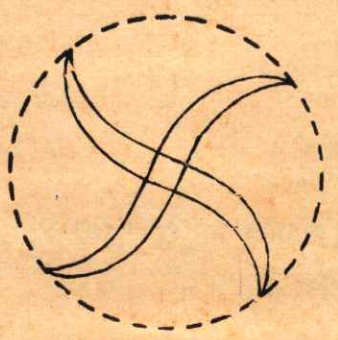

प्रकाशक

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक

शाक्त साधना पीठ

प्रयाग-६

शक्ति-तत्व

('शक्ति' के दार्शनिक तत्व सम्बन्धी निबन्धों का संग्रह)

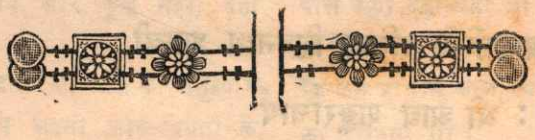

सम्पादक

'कुलभूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

चौखम्भा विश्वभारती
प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता
पोस्ट बाक्स नं० १०६१
चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी-२२१००१

प्रकाशक

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक

शाक्त साधना पीठ

प्रयाग-६

प्रथम संस्करण] फाल्गुन पूर्णिमा सम्वत् २०३१

Rs 6 P 00

अनुक्रमणिका

१—भूमिका : 'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल ... ३

२—माहात्म्य-निदर्शन : न्यायमूर्ति पण्डित शिवनाथ काटजू ... ५

३—मा : पूज्य-चरण परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १००८ स्वामी शङ्कर तीर्थ महाराज ६

४—जय मा : गुप्तावतार योगिराज बाबा श्री मोतीलाल महाराज ... १६

५—शक्ति-तत्व : विद्यावारिधि पण्डित शिवनाथ शास्त्री ... १७

६—श्री भवानी-स्तुति : श्री आद्य शङ्कराचार्य ... २०

७—वेद में शक्ति-तत्व : परम पूज्य 'राष्ट्र-गुरु' श्री १००८ स्वामी जी महाराज, ... २१

८—श्री भवानी-स्तुति : श्री आद्य शङ्कराचार्य ... २६

९—शक्ति-तत्व या ब्रह्म-विद्या : श्री कृपानाथ सिंह, एडवोकेट ... ३०

१०—शक्ति-तत्व (ध्यान-रहस्य) : ब्रह्मलीन श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती ... ४३

११—जगत्कारण-निर्णय : 'कविभूषण' पण्डित श्री हरि शास्त्री दाधीच ... ६१

१२—शक्ति-कथा : पूज्य-चरण परमहंस श्री १००८ स्वामी शङ्कर तीर्थ महाराज ... ६२

१३—आदि शक्ति : श्री भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' ... ६४

भूमिका

शक्ति-पूजा के प्रवर्तक भगवान् शिव माने गये हैं। इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि नारायण के एक शिष्य शिव ने अपना अलग वैदिक सम्प्रदाय प्रवर्त्तित किया था। पुराणों में शिव और दक्ष प्रजापति के विरोध की कथा मिलती है, जिससे प्रकट होता है कि दक्ष ने शिव-द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय का खण्डन किया था। और शिव-द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय और कुछ नहीं, यही शाक्त-सम्प्रदाय था।

यद्यपि शिव के उक्त सम्प्रदाय का दक्ष के नेतृत्व में घोर विरोध किया गया, तथापि अपनी लोक-प्रियता के कारण वह इस देश में जड़ पकड़ गया। यहीं नहीं, उसका भारत की सीमाओं के बाहर भी प्रचार हो गया। तन्त्रों में रथक्रान्त, विष्णुक्रान्त और अश्वक्रान्त नाम के तीन क्रान्तों का उल्लेख है। एशिया के जिस विशाल भूभाग में तन्त्रों का अर्थात् शाक्त-सम्प्रदाय का प्रचलन हो गया था, वह इन क्रान्तों में विभक्त था और इन क्रान्तों के अन्तर्गत भारत के अतिरिक्त अफ़गानिस्तान, मध्य-एशिया, तिब्बत, दक्षिणी चीन, इण्डोचीन, स्याम, ब्रह्मदेश और भारतीय द्वीप-पुञ्ज आदि देश शामिल थे। इस एक बात से शाक्त-सम्प्रदाय के विशाल प्रभाव-क्षेत्र का भले प्रकार अनुमान किया जा सकता है।

शाक्त-सम्प्रदाय की पूजा-पद्धति पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि उसके अनुयायी—क्या आध्यात्मिक दृष्टि से और क्या सांसारिक दृष्टि से—सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में बहुत आगे थे। सबसे महत्व की बात तो यह व्यक्त होती है कि वे मूर्ति-पूजक नहीं थे और उनके समाज में जाति-भेद का विचार नहीं था। यही नहीं, उनकी धार्मिक भावना बड़ी अनूठी थी। उनके देवता मणियों के देश और रत्नों के घरों में रहते थे। वे तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित रहते थे तथा सिंह जैसे पशु पर वे आरूढ़ होते थे। उनकी पूजा का सारा ठाठ-बाट एकदम राजसी होता था। उनकी आराधना की इस भव्य कल्पना से देश के तत्कालीन वैभव और गौरव का ही प्रमाण मिलता है।

भारतीय धर्मों के इतिहास का अवलोकन करने से प्रकट होता है कि किसी समय शाक्त-सम्प्रदाय की प्रतिपत्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। मोहन-जे-दारो के ध्वंसावशेषों में ऐसे स्पष्ट चिन्ह प्राप्त हुये हैं, जिनसे प्रकट होता है कि उस प्राचीन काल में भी भारत में शाक्त-सम्प्रदाय का अस्तित्व था।

परन्तु शक्ति-पूजा की सबसे अधिक मार्के की बात तो यह प्रतीत होती है कि इस वर्णाश्रम के कट्टर देश में उसने सबसे पहले 'विश्व-बन्धुत्व' और 'स्त्री-पूजा' के उदात्त सिद्धान्तों की घोषणा करके उन्हें कार्य का रूप दिया था। साथ ही यह पुनीत विचार भी लोगों में जागृत किया था कि सभी धर्मों में सत्य का ही प्रतिपादन किया गया है और परस्पर भिन्न होते हुये भी उन सबका अन्तिम लक्ष्य एक ही है। यह ऐसी ही धर्म-भावना के प्रचार का फल था कि बौद्ध-धर्म अपने समय में भारत में तथा उसके बाहर के समीपवर्ती देशों में सरलतापूर्वक फैल सका था।

परन्तु काल की कुटिल गति से शाक्त-धर्म की प्रतिपत्ति कायम न रह सकी और वैदिक-धर्म की तरह उसका भी पराभव हो गया। यहाँ तक कि अब साल में केवल दो बार चैत्र और आश्विन के नवरात्रों में शक्ति-पूजा का आभास दिखाई दे जाता है।

इसमें सन्देह नहीं है कि यह शक्ति-पूजा योद्धा-जाति का धर्म था। शक्ति-पूजा की 'दुर्गा सप्तशती' नाम की जो प्रमुख पुस्तक इस देश के धार्मिक क्षेत्र में आज भी अपनी महिमा बनाये हुये है, उसके दूसरे अध्याय में महाशक्ति

के आविर्भाव का जो रूपक अंकित किया है, वह जितना रहस्यपूर्ण, है उतना ही मनमोहक भी है। उसमें लिखा है कि एक बार दैत्यों ने प्रबल होकर देवताओं को युद्ध में परास्त कर इन्द्रलोक पर अधिकार कर लिया। अधिकार-च्युत देवता महादेव की शरण में गये। वहाँ विष्णु भी विद्यमान थे। जब उन्होंने देवताओं की करुण कथा सुनी तब उनको क्रोध हो आया। फलतः उन सबके शरीर का तेज निकल कर एक अभिनव महाशक्ति के रूप में परिणत हो गया, जिसने दैत्यों का संहार कर देवों को फिर पहले की भाँति अधिकारारूढ़ कर दिया। एकता के भाव तथा संघ-शक्ति का यह एक अतीव दिव्य रूपक है। शक्ति-पूजा का वस्तुतः यही रहस्य है। परन्तु देश के दुर्भाग्य से शक्ति-पूजा का यह प्राञ्जल भाव हमारी दृष्टि से सर्वथा ओझल हो गया है।

यह शक्ति-पूजा दुर्गापूजा के नाम से भारतीय धार्मिक-भावना में अपना विशेष स्थान रखती है। वर्तमान धर्म-ग्लानि के युग में उसका आज भी बहुत कुछ प्रचार है। कन्याकुमारी से काश्मीर तक और कामाख्या से हिंगलाज तक भगवती दुर्गा की नवरात्र के दिनों में बड़ी श्रद्धा के साथ पूजा होती रहती है।

और यह दुर्गा-पूजा इस देश के शाक्त-सम्प्रदाय की एक प्रमुख पूजा है। यद्यपि शाक्त-सम्प्रदाय का अब इस देश में पहले का सा प्रभाव नहीं रह गया है, तथापि दुर्गा-पूजा के रूप में उसका अस्तित्व अक्षुण्ण बना हुआ है।

शाक्त-सम्प्रदाय की उपास्य देवता 'शक्ति' का तात्विक रहस्य अति गूढ़ रहा है। उसे स्पष्ट करने की चेष्टा समय-समय पर विद्वज्जनों द्वारा की गई है। इस चेष्टा के फलस्वरूप अनेक शिक्षा-प्रद निबन्ध प्रकाश में आए हैं। प्रस्तुत संग्रह में ऐसे ही कुछ चुने हुये निबन्धों का संकलन किया गया है। आशा है कि इन्हें पढ़कर जिज्ञासु पाठक 'शक्ति' के दार्शनिक तत्व को हृदयङ्गम कर सकेंगे।

माहात्म्य-निदर्शन

सनातन धर्म के पाँच मुख्य देवताओं (विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेश) में 'शक्ति' का अपना विशेष महत्व है। 'शक्ति' का रहस्य उसकी विधिवत् साधना करने से ही समझ में आ सकता है। फिर भी विद्वज्जनों ने उसे समझने के लिये उसकी तरह-तरह से व्याख्या भी की है। इन व्याख्याओं को पढ़कर जिज्ञासु जनों को बड़ा उद्बोधन मिलता है और उन्हें वास्तविक साधना में तत्पर होने की प्रेरणा मिलती है। इसी उद्देश्य से 'शक्ति-तत्व' शीर्षक से निबन्धों का सङ्कलन अध्यात्म-विद्या के प्रेमियों के समक्ष उपस्थित किया गया है।

सर्वप्रथम निबन्ध 'मा' (पृष्ठ ९-१६) में यह तत्व दर्शाया गया है कि शक्ति की उपासना माता-रूप में करना कितना श्रेयस्कर है। शक्ति के जगन्माता-स्वरूप का सर्वाधिक स्पष्ट चित्रण श्री दुर्गा सप्तशती में किया गया है। उसी की सूक्तियों का आधार लेकर इस निबन्ध में जगदम्बा महामाया की महिमा को सरल शैली में इस प्रकार समझाया गया है कि आध्यात्मिक दर्शन की अनेक गूढ़ बातें पाठक की समझ में सहज ही आ जाती हैं। शक्ति का जगन्माता-स्वरूप वस्तुतः शक्ति का विराट् रूप है, जिसका आविर्भाव ब्रह्मा-विष्णु-महेश तथा अन्यान्य देव-गण के सम्मिलित तेज से होता है और जिसकी वे सभी वन्दना करते हैं। शक्ति का यह सर्व-व्यापक तत्व ऋषियों के काल से लेकर अब तक गम्भीर विवेचना का विषय रहा है।

वेदों में शक्ति का दर्शन किस प्रकार दर्शाया गया है, इसका परिचय 'वेद में शक्ति-तत्व' शीर्षक निबन्ध (पृष्ठ २१-२९) में दिया गया है। इस निबन्ध में अथर्व-वेद के प्रथम काण्ड के तेरहवें सूत्र के आधार पर 'शक्ति' की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। जैसा कि पहले उल्लेख किया है, यह विवरण 'शक्ति' के विराट् स्वरूप का है, जिसे 'परा-शक्ति' कहा जाता है। इस 'परा-शक्ति' के तत्व को समझना सरल बात नहीं है। इसी के स्थूल स्वरूप दश महा-विद्याएँ तथा अन्य देवी-रूप हैं, जिनका तत्व अलग गम्भीर अध्ययन का विषय है।

'परा-शक्ति' का तत्व वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त को समझने से ही भले प्रकार हृदयङ्गम हो सकता है। इसलिये 'शक्ति-तत्त्व या ब्रह्म-विद्या' शीर्षक निबन्ध (पृष्ठ ३०-४२) पाठकों के लिये बड़ा उपयोगी है। इस निबन्ध में वैदिक महावाक्यों और तान्त्रिक भाव-त्रय तथा सप्ताचारों का समन्वय दिखाते हुये शक्ति-उपासना के व्यावहारिक पक्ष को बड़ी सुन्दरता के साथ स्पष्ट किया गया है।

'शक्ति-तत्व' शीर्षक निबन्ध (पृष्ठ १७–२०) में विविध दर्शनों के आधार पर शक्ति के सर्व-सम्मत स्वरूप का स्पष्टीकरण किया गया है, जिससे भुक्ति-मुक्ति-दायक शाक्त-मत का महत्व पाठक के समक्ष सहज ही प्रस्तुत हो जाता है। इसी निबन्ध के 'ध्यान-रहस्य' भाग (पृष्ठ ४३-६१) में विस्तार से शक्ति के निर्गुणात्मक विराट् स्वरूप का वर्णन किया गया है, जिससे ब्रह्म-शक्ति, परा-शक्ति, आदि-शक्ति, माया, प्रकृति आदि नाम-पदों से जिस सूक्ष्म सत्-चिदानन्द-शक्ति को सम्बोधित किया जाता है, उसका आवश्यक ज्ञान पाठक को सरलता से मिल जाता है। साथ ही परा शक्ति के आदि रूप 'काली' के ध्यान की जो व्याख्या इस निबन्ध में की गई है, उससे शक्ति के सगुणात्मक स्वरूपों का स्पष्ट बोध होता है।

अन्तिम छठे निबन्ध 'शक्ति-कथा' (पृष्ठ ६२-६४) में पुनः ब्रह्म-स्वरूपिणी शक्ति का दिग्दर्शन कराया गया है, जिससे वैदिक संहिता और केन उपनिषद् आदि में विवेचित शक्ति-तत्व का ज्ञान पाठक को सुचारु रूप से मिलता है।

❀ ❀ ❀

'शक्ति' के माहात्म्य का बोध उक्त छः निबन्धों से

पाठकों को सहज ही हो जाता है। इसके साथ ही यहां उन्हें ऐसी महिमामयी शक्ति की उपासना के विषय में बोध कराना उचित ही होगा। इस सम्बन्ध में न्यायमूर्ति पण्डित शिवनाथ जो काटजू द्वारा लिखित निम्न निबन्ध ध्यान से पढ़ने योग्य है—

भारत में अनादिकाल से शक्ति की उपासना प्रचलित है। सनातन ब्रह्म निष्कल है। जब ब्रह्म सकलता को प्राप्त करता है तो उसकी इच्छाशक्ति ही प्रकृति और पुरुष का रूप धारण करती है और फिर सृष्टि का उद्भव होता है। प्रकृति और पुरुष ही परमेश्वर और परमेश्वरी हैं। दोनों वास्तव में एक हैं और इनकी एकता का ज्ञान ही योग की चरम सीमा है। प्रकृति देवी है, पुरुष शिव। दोनों की संयुक्त अवस्था ही अर्द्ध नारीश्वर का रूप है। दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध वैसा ही है जैसे वाणी और शब्द का। महाकवि कालिदास ने कहा है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्था प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ॥

जब शिव और देवी सन्मुखी होते हैं तो विश्व की रचना होती है और उसका पालन होता है। जब ये विमुखी हो जाते हैं तो सृष्टि लय हो जाती है। ब्रह्म की वह शक्ति, जो शिवाशिव का रूप धारण करती है और जिसके द्वारा विश्व की रचना, पालन और लय होता है, शाक्तों की उपास्य देवता है। शाक्त इसको माता के रूप में देखता है और इसी भाव से उसकी आराधना करता है। यही भुवनमोहिनी, जगद्जननी और महिमामयी महामाया है। इसके रूप अनेक हैं। इनमें काली, बगला, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरी, मातङ्गी, षोडशी, धूमावती, त्रिपुरसुन्दरी, तारा और भैरवी दश महाविद्यायें हैं। देवी के अनेक अवतार हैं। वह आज भी नाना रूपों में भारत के कोने-कोने और ग्राम-ग्राम में पूजी जाती है। परन्तु देवी के अनादि रूप को देवता भी नहीं जानते। यदि किसी ने जाना तो एक सदाशिव त्रिलोचन अनङ्गाङ्गहर शङ्कर ने। जब सृष्टि का कार्य आरम्भ हुआ तो इसके उद्भव का भार ब्रह्मा को मिला। परमेश्वरी ने अपने एक अंश से सावित्री की, ब्रह्मा की शक्ति के रूप में, उत्पत्ति की। फिर विष्णु का पालन का भार मिला और लक्ष्मी उनकी शक्ति बनी। लय के लिये शिव आये और स्वयं जगदम्बा शिव की शक्ति बनीं। परन्तु भुवनमोहिनी का अपना रूप क्या है, इसे किसी ने नहीं देखा। दुर्गा-सप्तशती में कहीं-कहीं संकेत मिलता है कि सम्भव है देवताओं ने उसकी झलक देखी हो। वेद, पुराण और तन्त्र महामाया परमेश्वरी की वन्दना और ध्यान से भरे हैं। देवताओं ने सदा परमेश्वरी की उपासना और वन्दना की है। यह कहीं नहीं मिलता कि जगदम्बा ने किसी देवता की आराधना की हो। जो समस्त ब्रह्माण्ड की वन्दनीय है, जिसकी शक्ति का न आदि है न अन्त, उसी महाशक्ति का शाक्त उपासक है।

शक्ति की उपासना भारत में प्राचीन काल से क्रमागत चली आ रही है। इसका क्रम वैदिक उपासना के साथ-साथ विशेष साधना के रूप में चल रहा है। सामान्य धर्म वैदिक रहा; पर इसके साथ ही शक्ति उपासना मन्त्रयोग के रूप में आदि काल से बराबर विद्यमान रही। वैदिक काल के ऋषियों की योगमयी तपस्या का जहां-जहां उल्लेख आया है, उससे स्पष्ट होता है कि वे ऋषि परम शाक्त थे। मन्त्र-विद्या द्वारा ही शक्ति की उपासना होती है और यह साधना सनातन से गुप्त धारा के रूप में बहती आई है। महाभारत-काल के पश्चात् जब कलिकाल का आरम्भ हुआ और जनमेजय के यज्ञ में अग्नि के शाप से वैदिक क्रिया की सफलता ब्राह्मणों की शक्ति के परे हो गई, तो प्रकट रूप से तन्त्रों का प्रतिपादन हुआ और पञ्चदेव की उपासना प्रचलित हुई। आजकल के हिन्दू-धर्म पर तन्त्रों की पूरी छाप है। इन्हीं तन्त्रों का एक प्रमुख अङ्ग शक्ति-उपासना को निर्दिष्ट करता है।

शक्ति-उपासना का सामान्य रूप तो नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में प्रचलित है। भगवती की वन्दना कौन हिन्दू नहीं करता?

स्थान-स्थान पर देवी के मन्दिर हैं, परन्तु यह उपासना सामान्य उपासना है, इससे आगे की सीढ़ियाँ ही साधक को शाक्तों की प्रबल उपासना तक पहुंचाती हैं। शाक्त मन्त्रयोग द्वारा परमेश्वरी का साक्षात्कार करता है, मन्त्र ही देवी की सूक्ष्म देह है। इसे प्राप्त करना ही दुर्लभ है। ज्योति ही मन्त्र को जीवित और दीप्तिमान करती है और वह ज्योति गुरु ही से प्राप्त होती है, बिना गुरु के शक्ति-उपासना में अग्रसर होना और सफलता प्राप्त करना दुर्लभ ही नहीं असम्भव है। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध ढकोसलों के रूप में प्रायः देखा जाता है, यह वास्तविक रूप कदापि नहीं है। गुरु पिता है और शिष्य पुत्र। दोनों की आत्मा

की एकता से ही यह सम्बन्ध स्थापित होता है। यह अति गहन विषय है और इसका रहस्य अनुभव ही से प्राप्त होता है। यह अवश्य है कि यह अति कोमल एवं दृढ़ बन्धन आज सामान्य गुरुओं और चेलों की लीलाओं से हास्यास्पद बन रहा है।

जहाँ शक्ति-उपासना का अधिकार प्राप्त करना कठिन है, वहां उसके साथ-साथ शक्ति-उपासना द्वारा प्राप्त की हुई शक्ति का पाचन भी टेढ़ी खीर है। इस आराधना से साधक में शक्ति का संचार होता है। उसे बहुत कुछ करने की क्षमता प्राप्त होती है। परन्तु शक्ति के दुरुपयोग से साधक की हानि होती है और उसका लोक-परलोक बिगड़ सकता है। शक्ति-उपासना शीघ्र फलदायक है। परन्तु इस पर चलना छत पर दौड़ना है। यदि गिरे तो हड्डी-पसली टूटने का भय है। शस्त्र पाकर उसका दुरुपयोग न करना, धन पाकर दुराचारी न बनना, ऐश्वर्य प्राप्त करके अधर्म की ओर अग्रसर न होना, बल पाकर अत्याचार न करना- यह सब संयमी ही कर सकते हैं, सब नहीं। इसी कारण से शक्ति-उपासना जोखम की वस्तु बन जाती है। इसीलिये गुरु यह देखता है कि शिष्य इस अति प्रबल उपासना का अधिकारी है या नहीं। यदि साधक शक्ति के उल्लास का पाचन कर गया और देवी के प्रसन्नार्थ उपासना करता गया तो वह शिव बन जाता है और पृथ्वी पर स्वयं देवता बन कर विचरता है। उपासना के और और मार्ग या तो भोग प्रदान करते हैं या मोक्ष की ओर ले जाते हैं। केवल शक्ति उपासना ही भोग और मोक्ष दोनों साथ-साथ देकर कैवल्य तक पहुंचा देती है। शक्ति की आराधना शीघ्र फल देती है। इसका अनुभव सरलता से हो सकता है। हाँ इसकी प्राप्ति का अधिकार कठिनाई से मिलता है। उसके लिये चेष्टा करनी पड़ती है और मन में भक्ति का भाव लाना पड़ता है। इसकी गोपनीयता का रहस्य ही यही है कि यदि यह प्रबल उपासना अनधिकारियों के हाथ में पड़ेगी तो जहां वे अपने आपको संकट में डाल लेंगे, वहां उसके साथ-साथ वे दूसरों को भी महान् कष्ट दे सकते हैं।

नवरात्रि हिन्दुओं का महान् पर्व माना जाता है। इन दिनों घर-घर में चण्डी पाठ होता है। सामान्य रूप से भारत के कोने-कोने में जगदम्बा की आराधना होती है। नवरात्रि का अवसर ऋतुओं के परस्पर संध्या का काल है। इस समय महाशक्ति के उस वेग की धारा, जो सृष्टि के उद्भव और लय का कारण है, अधिक तीव्र हो जाती है और आराधना में भुवनमोहनी का आवाहन अधिक सुगम होता है। योग में इसका अनुभव होता है। इस काल में इडा और पिंगला में वायु की गति समानता में रहती है और ऐसी अवस्था में कुण्डलिनी का जागरण और ऊर्ध्वगति सरल हो जाती है। इन्हीं कारणों से नवरात्रि के दिन महापर्व के हैं। प्रत्येक हिन्दू इन दिनों अपने आपको जगदम्बा के अधिक निकट समझता है और उसका स्मरण करता है।

यों चाहे व्यक्ति और समाज जगदम्बा को भूल जाये परन्तु जब-जब व्यक्ति और देश पर संकट पड़ा, तब सदैव शक्ति ही का आवाहन हुआ। भारत का इतिहास इसका साक्षी है। भारतीय स्वतन्त्रता का युद्ध भी 'वन्दे मातरम्' के गान से छिड़ा। 'वन्दे मातरम्' की 'माता' क्या महिमामयी महामाया से कोई भिन्न वस्तु है? 'आनन्दमठ' में संन्यासियों ने जिस 'माता' की वन्दना की है, वह जगदम्बा नहीं तो क्या है? आज जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो इस परम शक्तिशाली राष्ट्रगान का तिरस्कार करना कहां की बुद्धिमानी है! यह वैसा ही है जैसे उसी सीढ़ी को फेंकना, जिसके सहारे कोई छत पर चढ़ा हो।

शास्त्र का संकेत है कि कलिकाल का युगधर्म शक्ति-उपासना ही है-'मौल चण्डी-विनायकौ।' तन्त्रग्रन्थों में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि जब कलियुग प्रबल होगा तो एक मात्र शक्ति उपासना ही भवसागर के पार कराने का साधन होगी और उस समय शाक्त-धर्म की परम गोपनीय विद्या प्रकाश में आयेगी। क्या वह समय अब आ गया?

❀ ❀ ❀

न्यायमूर्ति पण्डित शिवनाथ जी काटजू के उक्त महत्वपूर्ण निबन्ध के अन्त में जो प्रश्न उठाया गया है, उसका उत्तर स्पष्ट है। आज देश की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में ही नहीं, अन्य भाषाओं की पत्रिकाओं में भी शाक्त-धर्म सम्बन्धी मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र आदि प्रमुख विद्याओं की चर्चा गम्भीरता के साथ हो रही है। साथ ही विदेशों में भी इस सम्बन्ध में जिज्ञासा अधिकाधिक बढ़ती ही जा रही है। ऐसी दशा में शक्ति-तत्व पर प्रकाश डालनेवाले साहित्य का महत्व स्पष्ट ही है।

कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग प्रयाग द्वारा शक्ति के प्रमुख दस स्वरूपों—१ काली, २ तारा, ३ षोडशी, ४ भुवनेश्वरी, ५ बगला, ६ भैरवी, ७ छिन्नमस्ता, ८ धूमावती, ९ मातङ्गी और १० कमला महाविद्याओं की आराधना के सम्बन्ध में व्यावहारिक ज्ञान करानेवाली अनेक उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं, जिनसे शक्ति-साधना के कर्मकाण्ड-पक्ष का महत्व प्रकट होता है। इनके सिवा शक्ति-तत्व के दार्शनिक पक्ष को स्पष्ट करनेवाली कितनी ही पुस्तकें भी प्रकाशित की गई हैं। इन सबका परिचय कल्याण मन्दिर के प्रकाशनों के सूचीपत्र से पाठक सहज ही प्राप्त कर सकते हैं।

इधर 'शाक्त-साधना-पीठ', चण्डी-कार्यालय, अलोपीबाग, प्रयाग के द्वारा पत्र-व्यवहार के माध्यम से शक्ति-साधना की शिक्षा देने की अलग व्यवस्था की गई है। 'पीठ' की मुख्य-पत्रिका के रूप में 'कौल-कल्पतरु' चण्डी नामक पत्रिका उपयोगी साहित्य द्वारा नियमित रूप से शक्ति-तत्व के विविध पक्षों पर प्रामाणिक ढंग से प्रकाश डाल रही है।

प्रस्तुत संग्रह में प्रकाशित निबन्धों से जिज्ञासु पाठकों को निश्चय ही शक्ति-तत्व को हृदयङ्गम करने में सहायता मिलेगी और इसके प्रकाशन का यही मुख्य उद्देश्य है। हमें विश्वास है कि इस प्रकार के निबन्ध-संग्रहों से शक्ति की महिमा को समझने और समझाने में पाठकों तथा आचार्यों को पर्याप्त सुविधा होगी। यदि ऐसा हुआ, तो इसी प्रकार के अन्य उपयोगी संग्रह प्रकाशित करने का प्रयास किया जायगा।

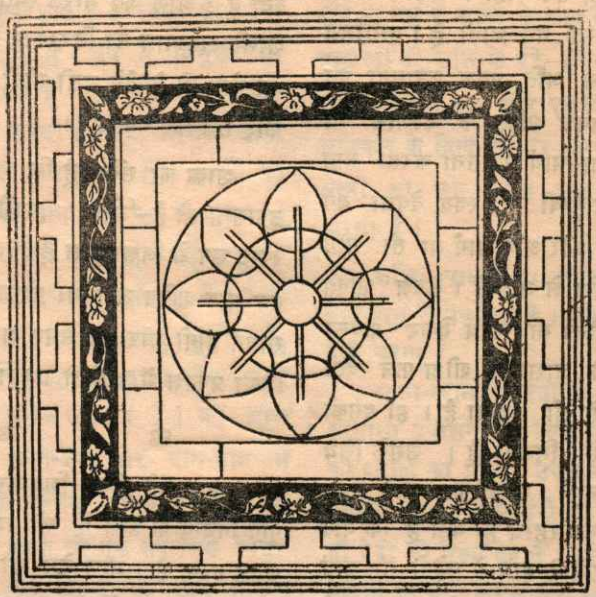

मा

मा, तुम अक्षर-परब्रह्म-स्वरूपिणी, तुम जन्म-नाश-रहिता, तुम द्योतनात्मिका हो। मा, तुम प्रणव वा ओंकार वा परम ब्रह्म हो, इस कारण तुम अक्षरा हो। "अक्षरं ब्रह्म परम्' और सदा अपने भाव में स्थिर रहती हो, इस कारण तुम अक्षरा हो—

क्षरति संचलति क्षरम्। न क्षरम् अक्षरं ध्रुवम्-अक्षरा ध्रुवा। "अक्षरं वर्ण-निर्माणं वर्णमप्यक्षरं विदुः। अक्षरं न क्षरं विद्यादक्षरं श्रुति-तोषयोः॥

मा, तुम सबकी आत्मा-रूप से विश्व-रूपिणी वा विश्व-व्यापिनी होने के कारण भी अक्षरा हो—

अश्नुते आप्नोति विश्वात्मकत्वाच्च अक्षरा।

और मा, तुम महाप्रलय में निखिल सृष्टि खा जाती हो यानी अपने में खींच लेती हो, इसलिये भी तुम अक्षरा हो।

अश्नाति गोन् लोकान् भुंक्ते भूतात्मवात् अक्षरा।

मा, एकमात्र सत्य वस्तु तू ही है—तुमसे अतिरिक्त जो कुछ है, वह असत् है-निखिल वस्तुओं के ही उपचय-अपचय परिणाम हो रहे हैं, केवल मात्र तुम ही एक भाव से एक रस से चिरकाल रही हो, इस कारण तुम नित्या हो—सन्मात्र हो-जन्म-नाश—रहिता हो। मा, तुम सुधा-अमृत-रूपा—निखिल ज्ञानों का फल हो, देवताओं का अन्न प्राण—आत्मा तुम्हीं हो। अकारादि-वर्णों में ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत-रूप तीनों मात्रा से अकार-उकार-मकार नाम से जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति के अभिमानी विश्वचैतन्य तैजस चैतन्य-प्राज्ञ चैतन्य रूप तीनों मात्रा से, ब्रह्मा-विष्णु-महेश इन तीनों देवता-रूप तीनों मात्रा से, ऋक्-यजु-साम इन तीन वेद-रूप तीनों मात्रा से, गार्हपत्य-आहवनीय-दक्षिण इन तीन अग्नि-रूप तीनों मात्रा से, भूलोक-भुवर्लोक स्वर्गलोक इन तीनों मात्रा रूप से मा, तुम्हीं विराज रही हो—

"सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।"

ॐ=अ+उ+म। अ+उ=ओ, इसमें 'म' देने से 'ओम्' होता है। ओंकार के सात अंग हैं—पूर्वार्द्ध में अ, उ, म और उत्तरार्द्ध में नाद (ॅ), विन्दु (ं), कला वा अंश वा शक्ति (=), शान्त वा कलातीत ( ) भाग हैं—

"ओंकारार्द्धोऽर्द्ध-मात्रान्त शान्तिनिःशेष-मानसः"

(योगवाशिष्ठ, निर्वाण, उत्तरखण्ड ७१।२)

मा ॐकार-रूपिणी शब्द-ब्रह्म है। शब्द-ब्रह्म के 'अकार' द्वारा रजो-गुण ब्रह्मा, 'उ' कार द्वारा सत्व गुण विष्णु और 'म' कार द्वारा शिव लक्षित होते हैं। 'नाद' सात्त्विक रामा शक्ति, राजसिक ज्येष्ठा शक्ति तथा तामसिक रौद्री शक्ति ये तीन शक्तियाँ हैं। 'विन्दु' सात्त्विक, राजसिक और तामसिक अहङ्कार-समष्टि है। सांख्य में इसी विन्दु को 'अहङ्कार' कहा गया है।

इस विन्दु-त्रय से विष्णु, ब्रह्मा और प्रकट रुद्र हुये हैं। रुद्र-रूप तामसिक विन्दु से उत्पन्न शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पंचतन्मात्राएं तथा उनसे उत्पन्न आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये पंचभूत; ब्रह्मा-रूप राजसिक विन्दु से उत्पन्न शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह शक्ति-पंचक तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ ये पाँच भौतिक कर्मेन्द्रिय; एवं विष्णु-रूप सात्त्विक विन्दु

से उत्पन्न शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषयक ज्ञान तथा श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण ये पाँच भौतिक ज्ञानेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार—ये चारों अन्तःकरण 'कला' शब्द से कहे जाते हैं। 'कलातीत' इन सबमें अनुप्रविष्ट अधिष्ठान-चैतन्य है। इस तरह ओंकार के सात अङ्ग हैं।

ओंकार के चतुष्पाद ये हैं—विश्व, तैजस, प्राज्ञ तथा तुरीय अथवा अविद्या-पाद, विद्या-पाद, आनन्द-पाद और तुरीय-पाद। स्थूल इन्द्रियों से ग्राह्य पदार्थों को 'स्थूल-पाद' या अविद्या-पाद या 'विश्व' कहा जाता है। जो पदार्थ स्थूलेन्द्रिय-ग्राह्य नहीं, पर अन्तरिन्द्रिय-ग्राह्य होते हैं, उनको 'सूक्ष्म-पाद' या विद्या-पाद या 'तैजस' कहा जाता है। गुणमात्र रूप से स्थित पदार्थ 'बीज' या आनन्द-पाद या 'प्राज्ञ' नाम से कहे जाते हैं। गुणातीत अवस्था 'साक्षी' या 'तुरीय' नाम से अभिहित है।

ओंकार के त्रि-स्थान ये हैं—जागरित-स्थान, स्वप्न-स्थान और सुषुप्ति-स्थान। यहाँ स्थान-शब्द के अर्थ हैं अभिमान के विषय। इनमें किसी प्रकार चलन या गतागति नहीं है। जागरित स्थान, स्वप्न स्थान तथा सुषुप्ति स्थान—इनमें ओंकार अभिमान करते हैं। जाग्रदवस्था में परिदृश्यमान जगत् (विश्व) तथा जाग्रदभिमानी पुरुष (विराट्) प्रथम स्थान हैं। स्वप्नावस्था में परिदृश्यमान जगत् (तैजस) तथा स्वप्नाभिमानी पुरुष (हिरण्यगर्भ) द्वितीय स्थान है। सुषुप्ति-अवस्था में अनुभूयमान अज्ञानाधिकृत आनन्द (अव्याकृत) तथा सुषुप्ति अभिमानी (प्राज्ञ) तृतीय स्थान है। अर्थात् जीव की समष्टि और व्यष्टि जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ ही शब्द-ब्रह्म रूप ओंकार के तीन स्थान हैं।

ओंकार पंच-देवता-मय है। 'अथर्वशिखोपनिषद्' में कहा गया है कि ॐकार ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और शिव (महेश्वर) इन पंच-देव-मय है—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरः शिव एव च।
पंचधा पंच-दैवत्यः प्रणवः परिपठ्यते॥

ब्राह्मणों के सर्व कर्मों में ॐकार का विनियोग अत्यावश्यक है। सुतरां ॐ कार को जानना ही ब्राह्मणों का प्रधान कर्तव्य है। ओंकार को न जानने से ब्राह्मणों के समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं। निष्फल-कर्म ब्राह्मणों की शक्ति तथा तेज हीन और निष्प्रभ हो जाने के कारण वे ब्राह्मणत्व से च्युत होकर ब्राह्मण नाम के अनधिकारी तथा अयोग्य रह कर दुःखपूर्ण जीवन-यापन में बाध्य हो रहे हैं। अतएव कहा गया है—सप्त अंग, चतुष्पाद तथा त्रि-स्थान-विशिष्ट एवं पंच-देवता-स्वरूप ॐकार को—मा को जो ब्राह्मण नहीं जानता, वह कैसे ब्राह्मण हो सकता है?

"सप्ताङ्गं च चतुष्पादं त्रि-स्थानं पंच-दैवतम्।
ओंकारं यो न जानाति कथं स ब्राह्मणो भवेत्॥"

मा, तुम केवल मात्र त्रिधा मात्रा-स्थिता—ॐकार-रूपिणी ही नहीं हो—अर्द्धमात्रा—तुरीया—निर्गुण ब्रह्म भी तुम्हीं हो, अर्थात् चित्-शक्ति परम-पद भी तुम्हीं हो—

"मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्द्ध-मात्रा परं पदम्"

नाद, बिन्दु, कला और कलातीत ये सभी परम-पद के अन्तर्गत हैं। स्वरूप में ओंकार-रूपिणी मा परम-पद—परम व्योम हैं। "यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः"—निखिल देवता इसी मा में ही वास करते हैं। मा परब्रह्म है परन्तु तटस्थ भाव से सृष्टि-स्थिति-लयकारिणी है। सृष्टि न भासने तक मा अर्द्धमात्रा निर्गुण ब्रह्म है और सृष्टि भासने के अनन्तर मा समष्टि-भाव से सगुण विश्व-रूप तथा व्यष्टि भाव से जीव-जीव में आत्मा है और सृष्टि के विपर्यय काल में युग-युग में मा अवतार-रूप से प्रकट होती है।

जिसका जन्म नहीं है, मृत्यु नहीं है, वही नित्या है। जन्म-मृत्यु-रहित वस्तु क्या है ? आत्मा ही है-"न जायते म्रियते वा कदाचित्।" मा ही आत्मा है--"आत्मा एवासि मातः।" वाह कैसे सुन्दर सिद्धान्त हैं ! जीव देह नहीं है, जीव आत्मा है--जीव ही मा है- जीव का जन्म भी नहीं है, मृत्यु भी नहीं है। जीव ! तुम्हारा शोक, मोह, रोग, मृत्यु—ये सब भ्रम-मात्र हैं। आत्मा-रूपिणी मा की भावना से जीव, तुम्हारे सम्पूर्ण मोह का लय अवश्य हो जायगा।

मा नित्या है—ब्रह्म-मयी है। मा, तुम ब्रह्म-मयी होने से स्पष्ट शब्द से तुम्हें कैसे उच्चारण किया जायेगा ! अर्द्धमात्रा का स्पष्ट भाव से उच्चारण नहीं किया जा सकता है। निर्गुण ब्रह्म तो धारणा के ही अतीत है-फिर उसका उच्चारण कैसे किया जाय ? श्रुति कहती है—

"यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।"

स्वर-संयोग के बिना अनुच्चारणीय जो अर्द्धमात्रा है-वह व्यंजन वर्ण रूप से विराजमाना जो है, मा, वह तो तुम्हीं हो—तुम अव्यक्ता हो-

"अर्द्ध मात्रा-स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।"

मां, व्यक्त-अव्यक्त निखिल रूप ही तुम्हारा है। तुम्हीं संपूर्ण विश्व हो-और संपूर्ण विश्व को तुमने ही धारण कर रखा है। सृष्टि, स्थिति, लय तुम्हारा विलास है। जगत् में जहां जो कुछ कार्य हो रहा है, मां, तुम्हीं कर रही हो। विद्या-रूपिणी भी तुम्हीं हो, अविद्या-रूपिणी भी तुम्हीं हो। मनुष्य को ज्ञान (आनन्द) देकर माया-मुक्त तुम्हीं करती हो, फिर अज्ञान देकर मोह-युक्त भी तुम्हीं करती हो—

"सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतु-भूता सनातनी ! संसार-बन्ध-हेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी।" "सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानममोहनं च।"

तुम जगत् की माता हो। साधारण जननी क्वचित् कदाचित् किंचित् जन्म देती है, पर तुम क्षण-क्षण में, पल-पल में अनंत कोटि ब्रह्माण्डों का सृजन कर ती हो। तुम्हारा कार्य, तुम्हारी शक्ति, तुम्हारी करुणा के वर्णन में कौन समर्थ है ?

देवगण और पितृगणों की तृप्ति लाभ की जाती है स्वाहा, स्वधा, मंत्रादि से शास्त्र-विहित कर्मों के द्वारा। परन्तु निखिल तृप्ति का आधार मा है। यह आनन्द-रूपिणी मा ही सर्वप्रकार आनन्द की समष्टि है, जिस प्रकार जल की समष्टि समुद्र है। घृत-भक्षण से आयु की वृद्धि होती है, इस कारण घृत को आयु कहा जाता है-"आयुर्वै घृतम्"; अन्न-भक्षण से जीवन-रक्षा होने के कारण अन्न को ही जीवन कहा जाता है--"अन्नं वै जीवनम्"; उसी प्रकार स्वाहा-स्वधा मन्त्रों से देवलोक तथा पितृलोक की तृप्ति होने के कारण स्वधा-स्वाहा को तृप्ति-रूपा जगदम्बा कहते हैं।

मा, तुम स्वाहा–देवताओं की तृप्तिकरी–देवताओं के लिये तृप्ति-रूपा होकर चिरकाल रहने की प्रतिज्ञा करने के कारण देव-हविर्दान-मंत्ररूपा हो, तुम स्वधा—पितरों की तृप्तिकारी—पितृलोक के उद्देश्य में दीयमान द्रव्य-जनित तृप्ति--पितृ-दान-रूप मंत्र भी तुम हो। तुम वषट्कार–देवताह्वान की मन्त्र-रूपिणी हो। स्वरात्मिका–उदात्तादि स्वर-रूप भी तुम हो—अथवा समस्त देव-कर्म वा पितृ-कर्म की फल-रूपा स्वर्ग भी तुम हो—"त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कार-स्वरात्मिका।"

मा, शब्द-रूप से ही तुम प्रथम आत्म-प्रकाश करती हो—शब्द-ब्रह्म तुम्हीं हो। और शब्द ही जगत् का प्राण है तथा जगत् की उपादान-भूत प्रकृति भी शब्द का ही कार्य है। प्रकृति भी तुम्हीं हो—'आनन्द-घन-सन्दोहः प्रभुः प्रकृति-रूप-धृक्'। मा, तुम ही चैतन्यरूपिणी हो और सर्वशक्ति भी तुम्हीं हो। मन्त्र-समूह शब्द ही है और मन्त्र ही चैतन्य-रूपी ब्रह्म का प्रत्यक्ष स्वरूप है। अग्नि और रुद्र एक ही हैं। अग्नि समस्त वस्तु के उपादान पृथक् करके ध्वंस करती है और

रुद्र भी विनाश का कर्त्ता है। इस कारण रुद्र ही अग्नि है, स्वाहा महादेव-पत्नी है।

सविता-जगत्-प्रसविता की अधिष्ठात्री देवता गायत्री है और जिस समय वेद-माता गायत्री 'भूर्भुवः स्वः' समेट कर आप-आपा निर्गुणा रहती है, तब वही सावित्री कहलाती है। सावित्री—मा ही समवाल में निर्गुणा, सगुणा, आत्मा और अवतार-रूपों से लीला करती है। मा, तुम आदि कारण होने से सर्वोत्कृष्टा द्योतनशीला—प्रकाशरूपा जननी हो—"त्वमेव सा त्वं सावित्री त्वं देवि जननी परा।"

मेरी मा चेतना-रूपिणी और सर्व-शक्ति-मयी है। चन्द्र, सूर्य, आकाश, समुद्र, प्रकृति सब कुछ मा ही धारण कर रही है। शक्ति-भिन्न शिव-चैतन्य तो शव मात्र है। मा के धारण न करने पर शिव वहाँ रह सकता है? सर्व-शक्ति मा की सृजन-शक्ति की मूर्त्ति है ब्रह्मा, रक्षा-शक्ति की मूर्त्ति है विष्णु और लय-शक्ति की मूर्त्ति है रुद्र! जगत् में सृष्टि, स्थिति, लय शक्ति का कार्य सर्वदा ही चल रहा है और मा ही सृष्टि-स्थिति-संहारापन्न-निखिल विश्व को अपनी ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्री शक्ति से धारण कर सृष्टि-स्थिति-संहार लीला सर्वदा ही कर रही है। संहार में भी मा आनन्द-रूपिणी ही है—

पायाद् वो वन्द्यमानः प्रलयमुदितया भैरवः काल-रात्र्या" (योगवाशिष्ठ निः उः ८१। १०२)

वशिष्ठदेव प्रार्थना कर रहे हैं—प्रलय में जगद्-भक्षण करके कालरात्रि-स्वरूपिणी प्रसन्ना आनन्द-विह्वला जो देवी नाचती हुई यहाँ भैरव की अर्च्चना कर रही है—काल-रात्रि से वन्द्यमान वह कल्पान्त-भैरव, हे श्रोतृ-वर्ग! तुम्हारे विघ्न विनाश कर तुम्हारी रक्षा करे।

"त्वयैव धार्यते सर्वं त्वयैतत् सृज्यते जगत्।
त्वयैतत् पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा॥
विसृष्टौ सृष्टि-रूपा त्वं, स्थिति-रूपा च पालने।
तथा संहृति-रूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये॥"

'मैं देह हूँ' इस प्रकार की बुद्धि 'अविद्या' कही जाती है। 'मैं देह नहीं हूँ, मैं चिदात्मा हूँ' ऐसी बुद्धि का नाम 'विद्या' है। अविद्या से जीव संसार में बँध जाते हैं और विद्या जीवों की माया के बन्धन खोल देती है। इस कारण जो लोग माया के बन्धन से मुक्ति चाहते हैं, उन्हें सर्वदा विद्या का अभ्यास करना चाहिए—

"देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्त्तिता।
नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति भण्यते॥
अविद्या संसृतेर्हेतु-र्विद्या तस्या निवर्त्तिका।
तस्माद् यत्नः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभिः॥"

महती विद्या परब्रह्म-गोचर-ज्ञानरूपा तत्वमसि अहं ब्रह्मास्मि इत्यादि महावाक्य-ज्ञान-जन्या विद्या महा-विद्या।

श्रीगुरुमुख से 'तत् त्वम् असि' तुम ही ब्रह्म हो—इस महावाक्य का श्रवण करके विचार द्वारा "अहं ब्रह्मास्मि" मैं ही ब्रह्म हूँ, "सोऽहम्" मैं ही वह हूँ इत्यादि महावाक्य विचार-जनित ज्ञान में जब स्थिति होती है, तब महाविद्या का नाम होता है। इस प्रकार ज्ञान में स्थिति होने पर जीव का अहं सच्चिदानन्द परब्रह्म में खो जाकर सच्चिदानन्द परब्रह्म होकर ही जो स्थिति होती है, वही महाविद्या मा है। स्थिति ही मा है।

मा महाज्ञान-स्वरूपा है—ब्रह्म-ज्ञान में स्थिति-रूपा है। फिर मा प्रपंच-ज्ञान-रूपा अविद्या भी है।

महती सर्व-विषया मुक्ति-पर्यन्ता वसना माया—अन्यत्र अन्याकारावभासिनी शक्ति महा माया। महती सुदृढ़ा अनात्मेति आत्मेति बुद्धिः एवं आत्मनि अपि अनात्मेति बुद्धि-माया महामाया। महती मूला सच्चिदानन्दे आत्मनि संसारित्व-रूपानर्थाविभास-हेत अविद्या माया महामाया मूला अविद्या।

महती ब्रह्मादि-मोहिका माया अविद्या-शक्तिः महामाया।

ब्रह्म में जगत् दिखलाना, अनात्मा में आत्मबुद्धि और आत्मा में अनात्मबुद्धि, असंसारी आत्मा को संसारी बनाना, ब्रह्मादि देवगणों को भी मोह में गिराना--ये सब महा माया के कार्य हैं। इस कारण कहा गया है—

तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः।
महामाया हरेश्चैतत् तया संमोह्यते जगत्--

इस मोह के बारे में विस्मय नहीं मानना चाहिए। जगत्पति श्रीहरि की योगनिद्रा-रूपा यह महामाया जगत् को संमोहित करती है।

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवि भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥"

स्वप्रकाश रूप सर्वैश्वर्यमयी महामाया अपनी आज्ञा और निषेध-लङ्घनकारी ज्ञानियों का चित्त भी बलपूर्वक विवेक से खींचकर मोह में गिराती है—उस समय प्रेममयी दया-रूपिणी मा ही 'महद्भयं वज्रमुद्यतम्" उद्यत-वज्र महाभयंकरी-रूप से दण्ड भी देती है। मा ही सत्त्व-रज-स्तमः गुणों से इस स्थावर-जंगम-पूर्ण विश्व को रचती है और रचने के अनन्तर सन्तानों को छोड़कर चली नहीं जाती, किन्तु सर्वदा ही सबकी रक्षा भी करती है। इसके आज्ञा-निषेध के पालन में चेष्टा करने पर यह मा प्रसन्ना होकर सबकी अभीष्ट-दात्री तथा मुक्ति का भी कारण होती है।

मा ही ब्रह्म-विद्या-रूपा है, समस्त पुरुषार्थ-साधिका परमा है, सनातनी--नित्या है, मुक्ति का हेतु है, और यह मा ही ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि ईश्वरों की भी ईश्वरी है तथा संसार-बन्धन का कारण भी यह मा ही है—

तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये॥
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।
संसार-बन्ध-हेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥

बुद्धि-शक्ति का नाम मेधा है। जिस शक्ति के द्वारा सभी आत्मा-रूप से अनुभूत होते हैं, उसी बुद्धि-शक्ति को महामेधा कहते हैं। जगज्जननी की सर्वज्ञत्व-शक्ति ही महामेधा है। निखिल-वेदों में जो कुछ है, उसका स्मरण महास्मृति है विधाता। ब्रह्मा सृष्टि करने के समय अतीत कल्प का स्मरण करके "यथापूर्वमकल्पयत्" अतीत कल्प में जिस प्रकार थी, उसी प्रकार की सृष्टि रचता है। जो कुछ सृष्ट हुआ है, जो कुछ सृष्ट हुआ था और जो कुछ सृष्ट हो सकता है--इन सबका ज्ञान ही वेद है। वेद का यह स्मरण भी मा तुम ही हो। स्मृति-रूपा तुम्हें सिवाय, ब्रह्मा अतीत कल्प का--निखिल वस्तु का स्मरण नहीं कर सकता।

संसार का मूल कारण है राग वा आसक्ति वा तृष्णा वा भोगेच्छा। तुम्हारे विधि-निषेध-पालन में सचेष्ट न रहने पर मा, तुम ही महामाया-रूप से जीव का विनाश करती हो। मा, तुम अपने आज्ञा-लङ्घन-कारी को महामोह, महा-ममता देकर बार-बार जनन-मरण-प्रवाह में डुबाती हो। मा, तुम समस्त देव-शक्ति-रूपा सात्त्विकी शक्ति हो, फिर समस्त असुर-शक्ति-रूपा राजसी शक्ति भी हो--

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी॥

शक्ति और शक्तिमान् का अभेद होने के कारण 'शैवागम' में कहा गया है—आनन्द-घन-सन्दोहः प्रभुः प्रकृति-रूप-धृक्—आनन्द-घन-मूर्ति प्रभु परमेश्वर ही प्रकृति-रूप भी धारण करता है। प्रकृति का गुण है सत्त्व, रज, तम। सत्त्वगुण ज्ञान और सुख का हेतु है। रजोगुण रागात्मक दुःख का हेतु है और तमोगुण आवरक, मोह वा अज्ञान का हेतु है। ये तीनों गुण जिस समय समान

अवस्था में रहते हैं। तब-प्रकृति का नाम होता है अव्यक्त।

मा, तुम चैतन्य-रूपिणी हो, चैतन्य से अतिरिक्त सब कुछ का मूल कारण वा प्रकृति भी तुम हो और इन तीनों गुणों को पृथक् कर जगद्-रूप से स्थापन करना भी तुम्हारा ही कृत्य है, इस कारण तुम 'गुण-त्रय-विभाविनी' हो। मा, तुम कालरात्रि—मरण-रात्रि—कल्पान्त-रात्रि—जगत्-लय-रूप रात्रि (रात्रि-अभिमानिनी देवता) हो। महारात्रि-ब्रह्मणो रात्रिः-चतुर्मुख ब्रह्मा की प्रलय-रात्रि—मुक्ति-रात्रि हो, और मोहरात्रि ममतावर्त्त-मोह-गर्त-पातिनी महामायाख्या संसार-कर्त्री मानुषी रात्रि भी हो, इस कारण तुम दारुणा अनति-क्रमणीया दुष्परिहारा हो—

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुण-त्रय-विभाविनी ।
कालरात्रि र्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ।

मा, तुम लक्ष्मी—धन-रत्नादि की अधिष्ठात्री चैतन्य-रूपिणी हो। अर्थ-प्राप्ति के लिये भी जो लोग तुम्हारे आज्ञा-निषेध का पालन करते हुये तुम्हारे शरणापन्न होते हैं, उनकी अर्थ-कामना भी तुम पूर्ण करती हो। अर्थार्थी भक्तों के ऊपर कृपा करना भी तुम्हारा स्वभाव है। मा, तुम सबके हृदय में बैठकर सबको चला रही हो, इस कारण तुम ईश्वरी हो। मा, तुम कर्म में घृणा-रूप से हृदय में रहने के कारण कुकर्म करने में लोक-लाज बाधा देती है। तुम निश्चयात्मिका बुद्धि-रूपा—चिन्मात्र बोधात्मिका अर्थात् निश्चयात्मिका बुद्धि वा विचार-शक्ति ही तुम हो। लाज-रूपिणी मा ही हमारी पाप-पथ से सर्वदा रक्षा करती है। भुक्त अन्नों का परिपाक कर हमें पोषण करती है, हमारे अंगों का सौष्ठव करती है मा ही। वैश्वानर अग्नि-रूप से पाक-कारिणी तथा अंगों का उपचय-कारिणी मा ही है।

यदृच्छा-लाभ में सन्तोष भी मा है। जिसके हृदय में मा विराज रही है, उसका फिर असन्तोष कहाँ से आयगा! जो होना है, होने दो—मंगल-रूपिणी मा मेरे उपकार के निमित्त ही मुझे सुख भी देती है, फिर विपद् देकर भी कर्म-क्षय कराती है। सन्तोष-रूपिणी मा ही मुझे कल्याण मार्ग में चला रही है। आनन्द-रूपिणी मा ही शान्ति है। विषय-सुख का अनुसन्धान न कर आनन्द-रूपिणी मा की ओर देखने से ही शान्ति मिलती है, मा से अतिरिक्त क्षण-ध्वंसी विषय लेकर विव्रत रहने से शान्ति कैसे मिलेगी?

भीतर-बाहर मा ही रही है—इसे विश्वास करो, करके आज्ञा-पालन में श्रद्धा करो। श्रद्धा पकने से ज्ञान का उदय होगा और तब तत्पर हो सकोगे—मा के एक-निष्ठ भक्त होकर अपने हृदय भरित कर सकोगे। उसके बाद 'मेरी आत्मा ही मा है'—इस ज्ञान का उदय होगा। इस अभेद ज्ञान से अचिर में ही शान्ति लाभ होगा—

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञाने लब्धा परां शान्तिमचिरेणाधि-गच्छति ॥

अपकार-कारीका अपकार न करने की इच्छा का नाम क्षान्ति वा क्षमा है—यह सहन-शक्ति है। जो सर्वदा भीतर-बाहर प्रणाम करते-करते मा के नाम लेने का अभ्यास करता है—सब कुछ सहन करने की शक्ति-रूप से प्रकट होकर मा ही उसे कृतार्थ करती है। मा ही क्षान्ति है—

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोध-लक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥

प्रतिदिन पहले ही इसी अमूर्त्त मा का स्मरण अत्यावश्यक है—उसके अनन्तर मा के मूर्त्त रूप का स्मरण करना चाहिए। मूर्त्त रूप किसी भी रूप से हृदय में ले आकर मा के निराकार भाव का चिन्तन करना होता है—

"साकारेण महादेवि निराकारं च भावयेत् ।"

मा, तुम अपने दश हाथों में दश आयुध (अस्त्र) लेकर दशभुजा महाकाली रूप से विराजती हो। मा, तुम

खड्गिणी—खड्ग-धारिणी, शूलिनी—शूल-हस्ता, घोरा—एक हाथ से छिन्नमुण्ड धारण करके अति भयंकरी, गदिनी—गदा-धारिणी, चक्रिणी—चक्र-धारिणी, शङ्खिनी—शङ्ख-धारिणी, चापिनी—धनु-धारिणी, वाण-धारिणी लौह कण्टकावृत क्रमोन्नत यष्ठी-धारिणी तथा लौह मुद्गर-धारिणी हो—ये सब अस्त्र तुम्हारे दश हाथों में शोभा पा रहे हैं। असुर-नाशिनी, अभक्त-भयंकरी मा के दश हाथों में यद्यपि दश प्रहरण हैं, श्रवण-युगल में मृत-शिशु-युगल शोभा पाते हैं, कटि-देश बालकों के हाथों से सुशोभित हो रहा है, सद्यश्छिन्न नरमुण्ड एक हाथ में देखा जाता है—यह मूर्त्ति यद्यपि अभक्त के लिए घोरा है—भयंकरी है, तथापि भक्त देख पाता है कि मा सौम्या—प्रसन्न-वदना सुन्दरी, सौम्यतरा—जो सुन्दरी से भी अधिक सुन्दरी और निखिल सुन्दर वस्तुओं से भी सौन्दर्य-शालिनी—अत्यन्त आह्लादिका है और मा ब्रह्मा इन्द्र प्रभृति देवगणों की भी नियंत्री है, इस कारण अतिशय श्रेष्ठा परमेश्वरी है—

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी वाण-भुशुण्डी-परिघायुधा॥
सौम्या सौम्यतराशेष-सौम्येभ्यस्त्वति-सुन्दरी।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी॥

जगत् में सत् तथा असत् कितनी वस्तु हैं, उनकी संख्या कौन कर सकता है? हे अखिलात्मिके! हे सर्व-स्वरूपे! उन सबकी जो शक्ति है, वही जब तुम हो, तो सर्व-शक्ति-स्वरूपा तुम्हारा स्तव किस प्रकार किया जा सकता है?—

यच्च किंचित् क्वचिद् वस्तु सदसद् वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥

जो इस जगत् का सृष्टि-कर्त्ता है, जो इसका पालन-कारी है और जो इसका लय-कर्त्ता है, उन महाशक्ति-धरों को भी तुम, हे मा, निद्रा से आच्छन्न करती हो, तो सीमा-शून्या शक्ति-शालिनी तुम्हारा स्तव करने में किसकी सामर्थ्य है? किसी की भी नहीं है—

यया त्वया जगत्-स्रष्टा जगत्-पातात्ति यो जगत्।
सोऽपि निद्रा-वशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥

जगत्पालक विष्णु, जगत्-स्रष्टा ब्रह्मा तथा जगत्-संहारक महेश्वर को भी तुम शरीर-धारण कराती हो, इस प्रकार महा-महा-शक्ति-शालिनी तुम्हें स्तव करने में इस जगत् में कौन समर्थ हो सकता है? यानी कोई नहीं हो सकता—

विष्णुः शरीर-ग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्॥

जब पूर्णभाव से मा का स्तव करने में असमर्थ ब्रह्मा जी भी जैसे-तैसे भाव से जिस किसी भी रूप से अपने मन की बात मा को निवेदन करके मा की महती कृपा लाभ कर लेते हैं, तो कातर-हृदय से दुःख दूर करने के लिये जिस किसी भाव से पुकारने पर ही मा अवश्यमेव दुःख दूर कर देगी। इस प्रकार सहाय रहने से भी मनुष्य किस कारण सारी आशा छोड़कर निराश होके दुःखों से म्रियमान होते हैं? धैर्य के साथ, विश्वास-पूर्ण हृदय से पुकारते रहो। अपनी शक्ति के अनुसार कातर-हृदय से मा को अपने दुःख सूचित करो—दुःख-प्रतीकार के लिए मा की स्वरूप-चिन्ता, मा के स्वभाव की चिन्ता करके—कल्पना में भी मा की मूर्त्ति जितनी हो सके, स्मरण करके और मा ही सब कुछ सजकर सामने खड़ी है, भावना करके, दुःख दूर करने के लिए मा से प्रार्थना करो—इससे ही मा निश्चय ही तुम्हारी ज्वाला-माला मिटा देगी।

मेरी मा तो सर्व-शक्ति-रूपिणी, दरिद्र-दुःख-भय-हारिणी, सर्वोपकार-करणाय सदार्द्र-चित्ता, करुणा-वरुणालया, दयमान-दीर्घ-नयना, नित्य-नव-नवाकरुण-प्रदर्शन में परिपूर्ण वराभय-प्रदायिनी जगत्-जननी हैं। मा कभी सन्तान की उपेक्षा नहीं करती—"नहि माता समुपेक्षते सुतम्"।

वैराभय-दायिनी मा के अभय श्रीपाद-पद्मों में जिसका चित्त लग्न हो गया है, वह तो सर्व-मय, सर्व-व्याकुलता, सर्व-द्वन्द्वों से चिर-मुक्त होकर अभय-पद में सुस्थित हो गया है। परमतत्त्व का ही नाम है--ॐ, ब्रह्म, आत्मा, मा।

करुणा करना ही मा का स्वभाव है। दुष्ट का संहार करके भी यह मा दुष्ट के प्रति करुणा ही करती है। विद्या, मात्रा, बुद्धि, स्मृति, संपूर्ण दैवी शक्ति, समस्त आसुरी सम्पत्—सब ही यह मा है। जगत् में मा से अतरिक्त और कुछ भी नहीं है। जब सकल कार्यों में, सकल वाक्यों में, समस्त भावना में इसी मा की सेवा विस्मृत न कर मनुष्य जीवन बिता सकता है, तभी वह समस्त कर्म-क्षय करके मा को लेकर ही--मा का होकर ही—मा होकर ही रहता है। यही जीव की संसार से मुक्ति है॥ ॐ श्रीः॥

जय मा

जय मा भवानी कालिका, जय भुवन बहु संचालिका।
जय मा मृडानी मालिका, शिव कंठकर लल लालिका॥ १॥
जय एकता समरस मता, जय सामरस्य सुमालिका।
जय शाकिनी संचारिका, जय हाकिनी हंतालिका॥ २॥
जय ईश माता मारिका, जय कारिका कङ्कालिका।
जय डाकिनी डमरु डिमध्वनी नायिका पल घालिका॥ ३॥
जय लक्ष्मणाग्रजपालिका, समरालिका अमरालिका।
जय शुक्र संजीवनि महाविद्या प्रदायिनि शालिका॥ ४॥
जय मन्त्रदा, जय यन्त्रदा जय प्रणव माया जालिका।
जय तन्त्रदा तन्त्रालिनी, जय इन्द्रजाला मालिका॥ ५॥
जय दृश्य एक विधायिका पुनि लुप्त नव नव नालिका।
जय 'मोति' माया लक्ष्यदा संरक्षिणी संरालिका॥ ६॥

शक्ति-तत्व

उद्यत्सूर्य-सहस्र-भास्वर-तनुः सूक्ष्मादति-सूक्ष्मा परा
विद्युत्पुञ्ज-निभेन्दु-कोटि-सदृशी धाम-त्रयाध्यासिनी।
तत्तैजस्त्रितयात्मकैक-मनुभिर्वाक्-काम-शक्त्याख्य-युक्
कूटस्थाब्धि-शरत्तुभिः परिणता नित्यात्मिका पातु नः॥

वह सूक्ष्मतम से भी अधिक सूक्ष्म, जिसके अभौतिक, अवैयक्तिक और वैयक्तिक शरीर सहस्रों उदयोन्मुख सूर्यों की ज्योति से (अनन्त, अपरिमेय प्रकाश से) प्रकाशित हैं; जिसका द्वितीय आकार विद्युत्पुञ्ज की भाँति (न श्वेत, न काला) प्रदीप्त है; जिसके तृतीय आकार से करोड़ों चन्द्रमाओं की शान्त और मोहक ज्योति निकलती है; जो तीन धामों में प्रसन्नतापूर्वक निवास करती है; जिसके तेज और वाणी का निरन्तर निस्सरण वाक्, काम और शक्ति-कूट कहलाता है और ३, ४, ५ व ६ अङ्कों द्वारा प्रकट किया जाता है; जो स्वभाव से नित्य और समस्त कारणों को मूल कारण है, वह परा भगवती हमारी रक्षा करे।

प्रिय पाठकों और पाठिकाओ,

सम्माननीय ऋषियों की व्याख्याओं तथा पुरातन व आधुनिक दार्शनिक, मनोदार्शनिक एवं वैज्ञानिक साक्षियों के आधार पर हम यह निस्सन्देह कह सकते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय, जो कुछ व्यक्त या अव्यक्त रूप में होती है, प्रधानतः उस ढंग पर निर्भर करती है, जिस ढंग में विश्व-सम्बन्धी योजना की मूल प्रेरणा अव्यक्त कारण को व्यक्ति और विकास में सहायता करती है।

ईश्वर का सृष्टि-रचना में क्या उद्देश्य है, इसका उत्तर कई प्रकार से दिया गया है। एकोऽहं बहु स्याम, आत्म-लीला, चितिः स्वतन्त्रा विश्व-सिद्धि-हेतुः, आदि के अनुसार अव्यक्त कारण को क्रमशः शब्दब्रह्म, अनाहत, अकृतनाद, आन्तरस्फोट, परा, प्राण प्रणव और महाकुण्डलिनी आदि के द्वारा अभिहित किया जाता है। विश्व-निवास-सम्बन्धी सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए न्याय और वैशेषिक संसार का कर्तृत्व स्वतन्त्र ईश्वर पर आरोपित करते हैं। उनके मतानुसार स्वतन्त्र ईश्वर आठ मूलतत्वों, नित्यज्ञान, नित्य-इच्छा आदि के द्वारा सृष्टि करता है। सांख्य कर्म की शक्ति की वकालत करता हुआ ईश्वर की उपेक्षा करता है। योग ईश्वर का कर्तृत्व निर्विवाद मानता है। वह ईश्वर पंच क्लेशों से अस्पृष्ट है। पूर्व-मीमांसा वेद-कर्म के अनुसार और जीव की पराधीनता के आधार पर सृष्टि-प्रवाह को अनादि मानता है और उत्तर-मीमांसा मायोपाधि ईश्वर का कर्तृत्व निरूपित करता है।

शक्ति-मत—अद्वैतवादी और द्वैतवादी दोनों—विश्व-रचना सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए कहता है कि शिव की संतुलितावस्था हो जाने पर शक्ति में क्षोभ उत्पन्न होता है और वह क्षोभ परस्पर के कार्य-विभाजन में परिणत हो जाता है। शिव और शक्ति में से एक का कार्य धनात्मक होता है और दूसरे का ऋणात्मक। शिव धनात्मक आधार का कार्य करते हैं और शक्ति ऋणात्मक चित्रों में धनात्मक पृष्ठ-भूमि के अनुसार रङ्ग देती हुई क्रमशः शून्य को रूप में बदलती चली जाती है—उत्तरोत्तर गहरा रङ्ग देती हुई—जब तक सृष्टि का विकास पूर्ण नहीं हो जाता।

उपर्युक्त विकासवादी सिद्धान्तों से—जगत् के सृष्टा की मनोदार्शनिक या इन्द्रियातीत परिस्थिति कुछ भी हो—

यह स्पष्ट हो जाता है कि अव्यक्त के व्यक्त होने के लिए मूल प्रेरणा आवश्यक है। इस इन्द्रियातीत मूल प्रेरणा को अत्यन्त शक्तिशाली भी होना चाहिए। इतना शक्तिशाली, जिसकी कल्पना भी न की जा सके—और वह समस्त उपादानों का, जिसकी सृष्टि के लिए आवश्यकता होती है—धारण करनेवाली भी हो, जिससे परमोत्कृष्ट विश्व का निर्माण कर सके।

मूल प्रेरणा स्वयं अनेक मनोदार्शनिक गतियों और चेष्टाओं का समवाय है, अतः उसे अकारण कहा जाता है। केवल मूल निर्माता ही उसका कारण है। यह शब्द-ब्रह्म या प्राण-शक्ति, जो समस्त स्पन्दनशील पिण्डों की प्राण है, जिससे प्राणी को शक्ति मिलती है, अन्तरास्फोट, जिसका स्पन्दन जीवन की आभ्यन्तरिक नाड़ी को गतिशील बनाता है, अनाहत जो प्रत्येक स्थान पर प्रस्पन्दित और प्रस्फुरित होता है, बिना किसी धातु-उपकरण की सहायता के, और जो सदैव अकृतनाद रहता है, किसी हाथ से नहीं रचा जा सकता। संक्षेप में हम सभी—जड़ और चेतन—इस परा, महा कुण्डलिनी या शब्द-ब्रह्म के द्वारा ही—जीवित रहते हैं। हम उसी के भाग या अंश हैं। हम उसी महान् के छोटे से भाग हैं। हमारी स्थिति ठीक बंधन में पड़े पशु जैसी है। हम कंचुकों से यथा संभव आनन्द की प्राप्ति करते हैं, पर शिव के वरदानों से वंचित रहते हैं।

उपर्युक्त सिद्धान्त—कि शब्द-ब्रह्म और महाकुण्डलिनी से पृथक् किसी पदार्थ की सत्ता ही नहीं हो सकती—की व्याख्या आधुनिक वैज्ञानिक दूसरे प्रकार से करते हैं। आधुनिक ज्योतिषी यह परीक्षण करने के बाद कि विश्व शाश्वत युवा रहता है, कहते हैं कि हम न सृष्टि का आदि मानते हैं और न अन्त। हम किसी ऐसी अवस्था को नहीं स्वीकार कर सकते जब कि शक्ति का अभाव हो जाने के कारण संसार मृतक हो जायेगा। वैज्ञानिकों का कथन है—"हम ऐसे स्थान की कल्पना नहीं कर सकते, जिसमें प्रकृति अपने दो रूपों में से किसी एक में मौजूद न हो। इच्छा या आकांक्षा के रूप में मन न केवल पशु या वनस्पति-जगत् में विद्यमान रहता है, वह सृष्टि के उस भाग में भी है, जिसे हम जड़ प्रकृति कहते हैं। प्रत्येक अणु-परमाणु में एक प्रकार की चेतना और इच्छा रहती है।" जेम्स जीन्स का कथन है—"विश्व सृष्टा के मस्तिष्क का एक विचार है।" इससे यही सिद्ध होता है कि मूलेच्छा अव्यक्त कारण द्वारा समस्त संसार में परिव्याप्त है। शक्ति का यह विस्तार ही शक्ति-मत का मुख्य प्रतिपाद्य है।

विभिन्न दार्शनिकों के अन्तिम लक्ष्य की विवेचना करने पर शाक्त-धर्म का मुख्य मत और भी स्पष्ट हो जाता है। न्याय और वैशेषिक के मत से जीव का अन्तिम लक्ष्य १६ और ७ दुःखमय तत्वों की बेड़ियों को तोड़ फेंकना है। सांख्य ने त्रिविध दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति को अत्यन्त पुरुषार्थ माना है। योग ५ क्लेशों की आत्यन्तिक निवृत्ति को मोक्ष मानता है। पूर्व-मीमांसा के मत से द्वन्द्व-समूहों से पृथक् होकर आकाश—स्वतंत्र की प्राप्ति ही मोक्ष है। उत्तर-मीमांसा के मत से अज्ञानता के बन्धन से छूटकर ब्रह्म में लीन हो जाना ही मोक्ष है।

दार्शनिकों के विविध समुदायों के अनुसार विश्व अपनी वर्त्तमान अवस्था में अनेक दुःख-द्वन्द्वों का आकार है। अतएव इसमें रहकर इन दुःख-द्वन्द्वों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना होता है। यहीं पर शाक्त-धर्म इन दर्शनों से भिन्न है। उसके मत से सृष्टि भुक्ति-मुक्ति के लिये है। इन दोनों का उपयोग पूर्ण रूप में होना चाहिये। व्यक्ति का कर्तव्य है कि शास्त्रों के अनुकूल आचार-व्यवहार करते हुए संसार के सर्वोत्तम प्राप्त साधनों को अनन्योपभोग का साधन बनाने में वीर की भाँति प्रयत्न करना और इस अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अभ्युत्कृष्ट सिद्धि को प्राप्त करना।

तपस्या-द्वारा प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग न हो जाय, अतएव शास्त्र के आदेशों का अक्षरशः अनुगमन आवश्यक है।

कारण यह है कि जो वस्तु हमारी बुद्धि को स्वतन्त्रता प्रदान करती है, पर हमें आत्म-संयम नहीं सिखाती, वह अन्ततः भयानक होती है (गेटे)। आत्म-सम्मान, आत्म-ज्ञान, आत्म-संयम, ये तीनों ही जीवन को परमेश्वर के पास ले जाते हैं--(टेनीसन)। अभिप्राय यह है कि शरीर और मन के संयम-द्वारा ही हम ईश्वर का सम्पूर्ण मन, सम्पूर्ण हृदय और सम्पूर्ण आत्मा से प्रेम कर सकते हैं।

भारतीय योग और तन्त्र-शास्त्र शारीरिक और मानसिक संयम की शिक्षा पर बहुत जोर देते हैं। इसके लिए उन्होंने कई प्रकार के आसन-व्यायामादि का विधान किया है, क्योंकि प्रकृति के नियमानुसार शरीर मशीन की भाँति काम करता हुआ संपूर्ण बाह्य और आभ्यंतरिक प्रभावों की प्रतिक्रिया करता है। उच्चतर क्षेत्रों में जब कि मस्तिष्क शक्ति और बल का अक्षय्य भांडार और साधन बन जाता है और असाधारण रहस्यमय कार्य करने की उसमें क्षमता आ जाती है, वह (मस्तिष्क) अपने में से इतना प्रदान कर सकता है, जितना उसमें रहने की सम्भावना भी नहीं होती। जितना पाता है, उससे अधिक दे सकता है। भारतीय सिद्धों में से अनेक इसी प्रकार के शक्ति-सम्पन्न योगी थे। उनके वश में ऐसी ही रहस्यपूर्ण शक्तियाँ थीं।

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च कामराट्,
अगस्त्य-नन्दि-सूर्याश्च विष्णु-स्कन्द-शिवास्तथा।
दुर्वासाश्च महादेव्या द्वादशोपासकाः स्मृताः,
शक्रश्च चोन्मनी चैव तथा च वरुणस्ततः।
धर्मराजोऽनलो नागराजो वायुर्बुधस्तथा,
ईशानश्च रतिश्चैव तथा नारायणोऽपि च।
ब्रह्मा जीवो महादेव्यास्त्रयोदश उपासकाः,
पञ्च-विंशति-संख्याकोपासकानां महेश्वरि।
(श्री विद्यार्णव तंत्रे ६)

ये सभी शाक्तधर्म के अनुयायी थे। अज्ञातवाद के रचयिता महर्षि वशिष्ठ तारा के उपासक थे। हमें यह भी ज्ञात हुआ है कि श्री शंकराचार्य के १९ शिष्यों में से ९ गृहस्थ थे और वे शाक्त-मत के अनुयायी थे। शारदातिलक और श्री विद्यार्णवतंत्र के रचयिता लक्ष्मणाचार्य जी और श्रीविद्यारण्य जी शक्ति-मत के समर्थक थे और साथ ही वेदान्ती भी। शंकराचार्य जी द्वारा स्थापित पीठों में श्रीयंत्र की पूजा अब तक प्रचलित है। इससे प्रकट होता है कि शक्ति-पूजा का सर्व-साधारण में बहुत अधिक प्रचलन था।

अन्त में शाक्त-मत के दो प्रधान तत्त्वों—भुक्ति और मुक्ति—के विषय में यह बतलाना आवश्यक समझता हूं कि दोनों का एक साथ निर्वाह हो सकना किस प्रकार सम्भव है। इसका उत्तर इस प्रश्न के उत्तर से मिल सकता है कि सर्वोत्तम आत्म-जिज्ञासु कौन हो सकता है। महर्षि नारद ने एक बार सनत्कुमार से अपनी विद्या का परिचय देते हुए कहा था—

स होवाच ऋग्वेदं अध्येमि यजुर्वेदं सामवेदं आथर्वणं चतुर्थमितिहासं पुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाको वाक्यमेकायनं देव-विद्यां ब्रह्म-विद्यां क्षत्र-विद्यां नक्षत्र-विद्यां सर्व-देव-जन-विद्यामेतदत्र भगवोऽध्येमि। छा० उ० अ०

ये सब शास्त्र तो केवल--

अरे महतो भूतस्य निःश्वसितमेतत् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासं पुराणं विद्यामुपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि अस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि।

बृ० आ० २४ अध्याय।

महत् के निःश्वास मात्र हैं! एक तांत्रिक के लिये अभ्यास करते समय परम शक्ति का अनुभव करने के पूर्व इनका अध्ययन-मनन अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

छन्दः पादौ तु वेदास्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्,
शिक्षा घ्राणं महेशानि हस्तौ कल्पोऽथ कथ्यते।
ज्योतिषं देवि तन्नेत्रं निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते,

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा-न्याय-विस्तरैः ॥
धर्म-शास्त्रं पुराणं च विद्या एताश्चतुर्दश ।
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गांधर्वश्चेति ते त्रयम ।
अर्थशास्त्र-समायुक्ता विद्याष्टदशधा रसाः ।

शाश्वत वेद-पुरुष का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये छन्द, व्याकरण, शिक्षा, कल्प, ज्योतिष आदि का पूर्ण परिचय आवश्यक है।

तांत्रिक साधक यह जानता है कि उसे अपनी साधना की पूर्ति के लिये उपर्युक्त विद्याओं का ज्ञान आवश्यक है। तभी वह उच्च-से-उच्चतर पद पर पहुंच सकता है। क्योंकि यह विश्व महत शक्ति का ही प्रकट और प्रकाश्य रूप है—

कामो योनिः कमला वज्रपाणि—
र्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरुच्येषा विश्वमातादि विद्या ॥
इमां विज्ञाय सुधाया मदन्ति
परिस्रुता तर्पयन्तः स्वपीठम्
नाकस्य पृष्ठे महतो वसन्ति
परं धाम त्रैपुरं चाविशन्ति ॥

श्री भवानी स्तुति

घृत-क्षीर-द्राक्षा-मधु-मधुरिमा कैरपि पदै-र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसना-मात्र विषयाः ।
तथा ते सौन्दर्यं परम-शिव-दृङ् मात्र विषयः कथङ्कारं ब्रूमः सकल-निगमागोचर-गुणे ॥

'घी, दूध, अंगूर अथवा शहद का स्वाद कैसा है और उनके स्वाद में क्या क्या अन्तर है—इसे हम शब्दों द्वारा अलग-अलग करके किसी प्रकार भी नहीं समझा सकते, चाहे हम कितने ही पण्डित और शब्द-शास्त्री क्यों न हों। इसका तो हम रसनेन्द्रिय के द्वारा अनुभव ही कर सकते हैं, दूसरे को समझा नहीं सकते। इसी प्रकार, हे देवि, तुम्हारी अनुपम छवि का कोई वर्णन नहीं कर सकता, वह तो केवल परम शिव के प्रत्यक्ष का ही विषय है। सौन्दर्य की बात ही क्या, तुम्हारे और-और गुणों का भी कोई वर्णन नहीं कर सकता। वेद और उपनिषद् भी हार मान जाते हैं और 'नेति'-'नेति' कहकर ही अपना पिण्ड छुड़ाते हैं।

सपर्णामाकीर्णां कतिपय-गुणैः सादरमिह, श्रयन्त्यन्ते वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति ।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः, पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्य-पदवीम् ॥

संसार में लोग अनेक प्रकार के गुणों से युक्त, पत्तोंवाली लता का ही आदरपूर्वक सेवन करते हैं। परन्तु मेरा अपना मत तो यह है कि जगत् में सब लोगों को अपर्णा (बिना पत्तों की बेल अर्थात् देवी पार्वती, जो इस नाम से प्रसिद्ध हैं) का ही सेवन करना चाहिये, जिनके संसर्ग से पुराना स्थाणु (ठूँठ) भी (अर्थात् देवाधिदेव महादेव, जो संसार के आदि कारण होने से सबसे पुराने तथा सर्व-गत, अक्रिय, अपरिणामी एवं निर्विकार होने के कारण "स्थाणु" अर्थात् अविचल कहलाते हैं) मोक्ष-रूपी फल देने लगता है।

वेद में शक्ति तत्व

शक्ति-तत्व की उपासना अनादि-काल से ही संसार में होती आ रही है। लौकिक और पारमार्थिक दोनों विषयों की सिद्धि इससे होती है, इसीलिये आर्यजनता सनातनकाल से ही बल, ऐश्वर्य, ज्ञान, सौन्दर्य, निःश्रेयस आदि तत्वों को अपने धर्म तथा समाज के अङ्गरूप में मानती आ रही है। ये सारी वस्तुयें शक्ति-तत्व के ही रूपान्तर हैं। उपनिषदों में जिसे ब्रह्म कहा गया है, वह शक्ति पदार्थ का अभिन्न रूपान्तर ही है। इसीलिये श्री आचार्य भगवत्पाद ने सौन्दर्यलहरी में कहा है—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवः न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।'

अर्थात् ब्रह्म शक्ति-तत्व-युक्त ही कार्य करने में समर्थ है अन्यथा वह कुछ भी नहीं कर सकता। अनुभव से भी यह बात प्रत्यक्ष है कि शक्तिमान् ही कोई भी कार्य करते देखा गया है। संसार के इतिहास से भी यह प्रकट है कि सदैव संसार में शक्ति-शालियों का ही बोलबाला रहा है। आर्य-जाति ने अतीत में जो कुछ भी ऐश्वर्य, ज्ञान, तप आदि की उन्नति की थी, उसका मूल कारण शक्ति-तत्व की उपासना ही है, क्योंकि बिना शक्ति के ये सब असम्भव हैं।

संसार के सबसे प्राचीन वैदिक ग्रन्थों के अवलोकन से भी यह बात पुष्ट होती है, जिनका उद्धरण आगे दिया जायेगा। वैदिक साहित्य में भी सबसे प्राचीन संहिता-ग्रन्थों में अनेक मन्त्रों में शक्ति-तत्व का रहस्य कहा गया है। देवीसूक्त, रात्रिसूक्त और सरस्वतीसूक्त तो प्रसिद्ध ही हैं। आज अथर्ववेद के प्रथमकाण्ड के तेरहवें सूक्त पर ही 'चण्डी' के पाठकों की सेवा में कुछ निवेदन करते हैं, जिससे शक्ति-विषयक ईश्वरीय आदेशों का रहस्य समझने का भाव हृदयंगम किया जा सकता है। शक्ति-तत्व को प्रधान रूप में बतानेवाले तान्त्रिक साहित्य के भावों का सामञ्जस्य भी यथा स्थान किया जायेगा, जिससे नव-शिक्षित जनता में तान्त्रिक साहित्य के विषय में जो भ्रान्त धारणा हो गयी है, उसका निराकरण होगा। सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के साथ तान्त्रिक सिद्धान्त का मिलान करते हुये विचार किया जायेगा।

इस सूक्त में चार मन्त्र हैं। भृगु आङ्गिरस इसके ऋषि हैं और विद्युत् देवता हैं। इस विद्युत्तत्व के द्रष्टा या आविष्कारक भृगु मुनि की शक्ति का उदाहरण महाभारत, पुराणादि ग्रन्थों में जिस तरह बताया गया है, उस तरह का कोई दूसरा उदाहरण आर्य ग्रन्थों में नहीं मिलता है। वे इतने शक्तिशाली थे कि उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश की भी परीक्षा ली थी और विष्णु को भी लात मारी थी। यजुर्वेद में भृगु आंगिरस के विषय में इस प्रकार कहा गया है—

भृगूणामाङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम (अ० १-१८)

अर्थात् अङ्गिरा-गोत्रवाले भृगुओं के तेज से तेजस्वी होओ। इसी के अनुसार शतपथ ब्राह्मण भी कहता है—'इत्येतद् वै तेजिष्ठं तेजो यद् भृग्वंगिरसाम्' अर्थात् भृगु आंगिरसों का ही यह सर्वश्रेष्ठ तेज है। गोपथ ब्राह्मण में 'एतद् वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वङ्गि साम्' (गो-पू-३ ४) कहा गया है। यह सब महत्व शक्ति पदार्थ का ही है। 'ऋषयो मन्त्र-द्रष्टारः' के अनुसार उक्त शक्तिशाली भृगु अङ्गिरा मुनि इस रहस्यमय सूक्त के ऋषि हैं। उन्होंने ही इस अनादि शक्ति-विज्ञान को जगत् के सम्मुख प्रकट किया है। विद्युत् इस सूक्त का प्रतिपाद्य देवता-रूप शक्ति-

पदार्थ है। 'द्युत् दीप्तौ' इस धातु से क्विप् प्रत्यय होकर वर्त्तमान दीप्ति प्रकाश आदि अर्थों की सिद्धि होकर विद्युत् का स्पष्ट अर्थ यह है कि विद्युत् सबका प्रकाशक है और स्व-स्व-कार्य-करण में समस्त पदार्थों को वह योग्यता प्रदान कर रही है। आजकल पाश्चात्य विज्ञान के प्रचार से बिजली-तत्व का जो प्रचार एवं उपयोग हो रहा है, वह इसका स्थूल ही रूप है। शुद्ध चेतन-रूप, जो सारे जगत् का नियामक है, इससे परे है। वही इस सूक्त का प्रतिपाद्य है। उसे ही दार्शनिक ग्रन्थों में सच्चिदानन्द-रूपिणी बताया गया है। वही ब्रह्म-तत्त्व है। यह भाव सूक्त के अक्षरों पर ध्यान देने से प्रकट होता है, जिसका पहला मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते अस्त्वश्मने येनादूंहाशे अस्यसि ॥ ॥

अर्थात् हे प्रकाश-रूपवाली देवि विद्युत् शक्ति-रूपे, तुझे नमस्कार है। शब्द-रूप से गर्जना करनेवाली तुझे नमस्कार है। अश्म वज्र भी तेरा रूप है, अतः उसे नमस्कार है, जिससे तू हमारे क्लेशों को नष्ट करती है।

बिजली का मुख्य सम्बन्ध जल से है। उसका कारण-रूप मेघ है। उसमें बिजली की चमक, गर्जना तथा वज्रपात तीनों होते हैं। ये तीनों विद्युत् शक्ति के भौतिक रूप हैं। जगत् के व्यवहार में इन तीनों चीजों का उपयोग करके आज भौतिक विज्ञान अनेक चामत्कारिक दृश्य नित्य नये रूप दिखा रहा है, परन्तु इससे केवल ऐहिक लाभ ही सब लोग उठा सकते हैं, मानसिक या आध्यात्मिक उन्नति में इसका कोई साक्षात् उपयोग नहीं है, केवल बाह्योपकरणमात्र में ही इसका उपयोग है। इसलिये इसे मनुष्य-जीवन का लक्ष्य माननेवाले पाश्चात्य समाज का इस समय विनाशोन्मुख प्रवाह हो रहा है। एलेक्ट्रॉन-प्रोटॉन और न्युट्रॉन इन दो प्रकार की बिजलियों से सारे पार्थिव पदार्थों की सृष्टि हुई है। पृथ्वी का यह वर्तमान रूप इन्हीं दोनों विद्युतों के योग का परिणाम है। यह साइन्स वेत्ताओं का मत है। इसी से मिलता-जुलता वैदिक सिद्धान्त भी है—

इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा' (श०१४-१-२-१०)

अर्थात् भूत—भौतिक सृष्टि के पहले यह पृथिवी ही उपन्न हुई। विद्युत् के विषय में उक्त मन्त्र में जितने शब्द आये हैं, उनकी निरुक्ति वैदिक ग्रंथों में भिन्न-भिन्न प्रकार से की गयी है।

विद्युत् 'शक्तिः' तान् देवान् व्यद्यत् पापनः सकाशात् वियोगितवान् यद् विद्युत् तस्माद् विद्युत् (तै० ३-१०-९-१)

अर्थात् देवताओं को पापों से छुड़ाने की वजह से उसका नाम विद्युत हुआ; 'विद्युद् ब्रह्मेत्याहुः' (श० ६-१-३-१४) विद्युत् ही ब्रह्म है; 'विद्युद् वाऽशनिः' (श० ६-१-३-१४ बिजली ही वज्र है; विद्युद् वाऽअपां ज्योतिः' (यजुर्वेद १३-५३) बिजली ही जल की ज्योति है; वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव विद्युद हि इदं वृष्टिमन्नाद्यं सम्प्रयच्छति' (ऐ० २-४१) अर्थात् समस्त जल-करणों का एकीभाव ही बिजली है; बिजली ही वृष्टि, अन्नादि की पुष्टि को प्रदान करती है; यो विद्युति पुरुषः स सर्व-रूपः सर्वाणि ह्येतस्मिन रूपाणि' (ऐ० ४-१) अर्थात् बिजली में वह पुरुष है। उसी के ये सब रूप हैं, उसी में ये सब रूप रहते हैं।

बिजली में गति है। जहाँ गति है, वहाँ शब्द का रहना या होना नियम-सिद्ध है। शब्द ही वज्र है या उसकी अभिन्न शक्ति ही वज्र कहलाती है, जिसे कहा गया है—'वज्र एव वाक्' (ऐ० २-२१), 'वाग्वि वज्रः' (ऐ० ४-१)। महर्षि पतञ्जलि महाभाष्य में कहते हैं—'स वाग् वज्रो यजमानं हिनस्ति' अर्थात् वह वाणी वज्र होकर यजमान का विनाश कर देती है। इन उक्त प्रमाणों पर विचार करने से विद्युत् शक्ति के भौतिक,

दैविक एवं आध्यात्मिक रूपों का रहस्य स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है।

महर्षि यास्क का मत है कि प्रत्येक वैदिक मन्त्र का अर्थ भौतिक, दैविक एवं आध्यात्मिक इन तीनों रूपों में वैदिकों को जानना चाहिये। यत्कामऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतो समन्त्रा भवति तान्त्रिविधः परोक्ष-कृताः प्रत्यक्ष-कृताः, आध्यात्मिकश्चैव' (नि० ७-१) अर्थात् जिस अर्थ की इच्छा से ऋषि जिस देवता की स्तुति करता है, वह मन्त्र उस देवता का होता है। उसके तीन भेद हैं—परोक्ष, प्रत्यक्ष और आध्यात्मिक। अन्य पुरुष की अपेक्षा से जो वर्णन होता है, उसे परोक्ष, मध्यम पुरुष (तुम) की अपेक्षा वाले को प्रत्यक्ष तथा मैं (अहम्) रूप से तादात्म्य करके बतलाने वाले मन्त्रों को आध्यात्मिक कहते हैं। इस नियमानुसार सूक्त की यह ऋचा प्रत्यक्ष कृत है। ऋषि प्रत्यक्ष रूप में उस महाशक्ति का वर्णन कर रहे हैं। वेदान्त शास्त्र में अन्य पुरुष का अन्तर्भाव मध्यम तथा उत्तम पुरुष में किया जाता है। 'युष्मदस्मद्-गोचरयोः' इत्यादि भाष्य में श्री स्वामी शङ्कराचार्य ने अहम् और त्वम् को ही निकट-सम्बन्धी माना है। इनमें भी 'अहम्' ही मुख्य है। तुम का व्यवहार भी कल्पित है, क्योंकि व्यवहार-काल में तुम का उपयोग मानकर भी अपने को सब कोई 'मैं' ही कहते हैं। इसलिए तुम का व्यवहार कल्पित ही है, क्योंकि भेद मायिक है और भेद-कृत समस्त वर्णन मायिक है। परमार्थ आध्यात्मिक वर्णन है। परोक्ष, प्रत्यक्ष वर्णनों का अभिप्राय अध्यात्मवाद में तात्पर्य रखता है।

महर्षि व्यास भी 'तत्तु समन्वयात्' वे० द० १-४-३) इस सूत्र से समस्त वैदिक वाक्यों का तात्पर्य ऐसा ही मानते हैं। महर्षि यास्क ने 'अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि' इस देवी सूक्त को आध्यात्मिक अर्थ में ही बताया है। अतः अध्यात्मवाद की अपेक्षा से इस मन्त्र का आधिदैविक अर्थ इस प्रकार लगाया जा सकता है (दैविक अर्थ अध्यात्म वाद के ही अन्तर्गत है)—'हे देवि, विद्युत्-रूपे, मूलाधार चक्र में सार्ध-त्रिवलय रूप से रहनेवाली तुझे नमस्कार है। ध्वनि-वर्ण-रूप से गर्जना करनेवाली, तुझे नमस्कार है। स्वाधिष्ठान आदि चक्रों के भेदन में वज्र का कार्य करने-वाली, तुझे नमस्कार है!' इन तीनों कार्यों की सिद्धि शक्ति से ही होती है, जिसे तन्त्र-शास्त्राभ्यासी साधक अच्छी तरह जानते हैं। इनके सुसम्पन्न होने पर सभी साधकों के कष्ट (पाप) निवृत्त हो जाते हैं। इसीलिये ऋषि कहते हैं 'धिना दूडाशो अस्यसि' अर्थात् हमारे (साधकों के) सभी क्लेशों को दूर करती है।

शक्ति-पदार्थ का विशद रूप में निरूपण करनेवाले तन्त्र-ग्रन्थों में भगवान् शिव ने बताया है कि मूलाधार चक्र में सोये हुये सर्प के आकार में सार्ध-त्रिवलय रूप में इस जगत् का अभिन्न-निमित्तोपादान-कारण शक्ति-तत्त्व है, जो आन्तरिक साधन से जाग्रत् होता है। उक्त मन्त्र के वर्णन के ही अनुसार तान्त्रिक साधना में शक्ति पदार्थ का वर्णन किया गया है। त्रिपुरा-सार-समुच्चय में कहा गया है—

शक्तिः कुण्डलिनीति यानि गदिता आद्यैः संज्ञा जग-न्निर्माणे सततोद्यता प्रविलसत् सौदामिनी-सन्निभा।
शंखावर्त-निभां प्रसुप्त-भुजगाकारां जगन्मोहिनीम्,
तन्मध्ये परिभावयेद् विसलता-तन्तूपमेयाकृतिम्॥१०॥
हूँ कारेण गुरूपदिष्ट-विधिना प्रोत्थाप्य सुप्तां ततः,
कृत्वा तां कलया तयापर मया चिद्-रूपया सङ्गताम्।
मायां कुण्डलिनी समाहित-मनास्ता-मुच्चरेत् कारिकां,
शक्तिं ब्रह्म-महा-पथेन सहितामा-धारतः स्वात्मना॥
(४ प-११)

अर्थात् आद्यैः संज्ञा-वाली, जगद्-रचना में सततोद्यत, चमकती हुई बिजली के सदृश, शंख के मुख के समान आवर्त (चक्करदार) सदृश, सोये हुये सर्प के समान, सारे

जगत् को मुग्ध करनेवाली, बिस-तन्तु के सदृश कुण्डलिनी-शक्ति मानी गयी है । रूपदिष्ट रीति से 'हूँ'—बीजाभ्यास द्वारा सोई हुई कुण्डलिनी को उठाकर परम चित्कला से उसका योग करके आधार-पद्म से लेकर सहस्रार-पर्यन्त समस्त षट्-चक्रों का समाहित मन द्वारा अनुभव करना चाहिये । १०, ११

इसी मार्ग में शब्द या नाद का भी अनुभव योगी साधकों को होता है । इस सम्बन्ध में कहा गया है—

आदौ मत्तालि-माला गल-पथ-विगलत्तार-झंकार-हारी, नादोऽसौ वंशि-कांस्यानिल-भरित-लसद्-वंश-निस्वान-तुल्यः । घंटा-नादानुकारी तदनु-जल-निधि-ध्वान-घोरो गभीरो, गर्जं पर्जन्य-घोषः पर इह कुहरे वर्तते ब्रह्म-नाड्याः (३ पृ. श्लो.)

अर्थात् पहले मत्त भृङ्ग की गुञ्जार होती है । बाद में वेणु की मधुर ध्वनि सुनाई देती है । तत्पश्चात् घंटा-नाद समुद्र की ध्वनि सदृश सुनाई देता है । यह सब घोष ब्रह्म-नाडी में सुनाई देता है । द्रि. इ-५० । नौ नाद तथा वर्णों की भी उत्पत्ति तन्त्रों में कुण्डलिनी के जागने पर ही मानी जाती है । कुण्डलिनी का यह रहस्य षट्चक्रों के सहित वेद में भी माना गया है—

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती एक-पदी द्विपदी सा चतुष्पदी नव-पदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् (ऋ. सं. १-१६४-४१)

अर्थात् गौरी वाक् कुण्डलिनी-महाशक्ति जलों को तोड़ती हुई (जल से पंच-तत्वों का उपलक्षण है, जो षट्-चक्रों में चिंतित होते हैं । तोड़ने से वज्रपातो गृहीत होता है । इस प्रकार 'तक्षू-तनू-करणे' का अर्थ संगत होता है) एकपदी, ॐ द्विपदी, सोऽहम् सा ॐ चतुष्पदी, ॐ भूर्भुवः स्वः अष्टापदी, अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग तथा नवपदी नवनाद वाली है । सहस्रार न सहस्राक्षर वाला भी हो जाती है ।

यह रहस्य तन्त्र-वेत्ता योगियों को भलीभाँति विदित है । यहाँ इसे लिखने का अभिप्राय यह है कि सूक्त के प्रथम मन्त्र में **'विद्युते, स्तनयित्नवे, अश्मने'** इन शब्दों द्वारा तन्त्रोक्त सिद्धान्त का भी एकीकरण होता है । षट्-चक्रों में जिन-जिन देवताओं का वास माना जाता है, वे व्यष्टि-रूप हैं । **'यः पिण्डे स ब्रह्माण्डे'** की उक्ति के अनुसार वे देवतागण भी उसी परा-महाशक्ति के अंग हैं । जैसे शरीर के संचालन में उनका उपयोग है, वैसे ही ब्रह्माण्ड में भी उनका रूप है ।

पिण्ड-ब्रह्माण्ड के अभेद का अनुभव कर अद्वैत तत्त्व पर पहुँचना ही शाक्तवाद का परम लक्ष्य है । **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** के अनुसार प्रथम मन्त्र में कहा हुआ शक्ति का स्थूल-रूप इस परा-शक्ति का ही रूपांतर है, जो गुण-वैचित्र्य से नानाकार प्रतीत हो रहा है **'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'** का यही अभिप्राय है । द्वैत अवस्था में रहते हुए योग-क्षेम की प्राप्ति करना भी अत्यन्त आवश्यक है । अतः सूक्त के दूसरे मन्त्र द्वारा ऋषि कहते हैं—

नमस्ते प्रवतो न पाद्यतस्तपः समूहसि ।
मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥२॥

अर्थात् हे देवि, प्रकृष्ट ज्ञानवालों को तू पतन की ओर नहीं ले जाती है, इसलिए तुझे नमस्कार है, क्योंकि तू तप, ज्ञान आदि श्रेष्ठ वस्तुओं का समूह है । अपने कल्याणात्मक रूपों से हमारी रक्षा कर । हम तेरी सन्तान हैं । हमारे लिये कल्याण (मय) का दर्शन करा ।

भुक्ति-मुक्ति दोनों प्रकारों की प्राप्ति शक्ति-साधना से होती है । इसी अभिप्राय से सप्तशती ग्रन्थ में सुरथ तथा समाधि इन दोनों अधिकारियों को मेधा-महर्षि ने उपदेश दिया है । **'भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव'** वाला सिद्धान्त इसी तत्व पर माना गया है । सूक्त के उक्त मन्त्र में यही बात कही गयी है । सप्तशती के इस मन्त्र में भी ऐसा कहा गया है—

। सुशास्त्रेषु विवेक-दीपेष्वाद्येषु

वाक्येषु का त्वदन्या ।

ममत्व-गर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्यतदतीव विश्वम्'

(अ० ११-३०) ।

इस मन्त्र की व्याख्या सर्वस्वकार ने जैसी की है, उसका तत्व यह है कि 'हे देवि, ज्ञान-उपाय के साधन आन्विक्षिकी आदि विद्याओं में जिससे लोक के योग-क्षेम का विधान होता है, मनु आदि शास्त्रों द्वारा प्रवृत्ति एवं निवृत्ति तथा विवेक के दीप-स्वरूप वेदान्त आदि शास्त्रों का जो अनादर करते हैं, उन्हें अहम्-मम-अभिमान रूप संसार में, जो अन्धकार-रूप है, तू घुमाती है ।

'अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते'—इस मन्त्र में भी उक्त तत्व ही कहा गया है अर्थात् अविद्या की उपासना करनेवाले अन्धकार में चले जाते हैं । यही पतन है । 'विद्ययामृतमश्नुते'—विद्या से ही अमृत की प्राप्ति होती है । इसलिये तू विद्वानों को पतन की ओर नहीं ले जाती है । अतः हमें भी वहीं मार्ग बता, क्योंकि—

लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टि-स्वधे ध्रुवे ।

महारात्रि महाविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते ।

(सं०११-२१)

अर्थात् ऐश्वर्य, लज्जा (शुभ गुण), महाज्ञान (अविद्या-निवर्तक) श्रद्धा, पुष्टि-रूप स्वधा, नित्य, महारात्रि-रूप अन्धकार, अज्ञान-स्वरूपावरण करनेवाला भी हे नारायणि, तेरा स्वरूप है । अतः तुझे नमस्कार है ।

वेद में इसे ही कल्याण-रूपवाली शिवा तनु कहा गया है—

'या ते रुद्र शिवा-तनूरघोरा पाप-क्राशिनी ।

तया नस्तन्वा शन्त मया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ।

(यजु० १६-२)

अर्थात् हे रुद्र, आपकी कल्याणकारी शान्ति तथा ऐश्वर्यादि को प्रदान करनेवाली जो शिवा (महाशक्ति) तनू है, उसके द्वारा हमें आप निरीक्षण करें । हम सब तेरे पुत्र हैं, हमारा कल्याण (मय) करें ।

'अमृतस्य पुत्राः'—इस श्रुति से सारा विश्व उसकी ही सन्तति है, यह सिद्ध होता है । 'यद् वै शिवं तन्मयः' (तै० २, २, ५, ५) यहाँ पर कल्याण के वाचक 'मय' शब्द का व्यवहार किया गया है । उक्त बातों की सिद्धि के लिये वैदिक कर्मकाण्ड एवं तांत्रिक कर्मकाण्डों का निर्माण महर्षियों ने किया है, जिनका आचरण करके सभी प्रकार के ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है । महर्षि कणाद ने धर्म की व्याख्या की है कि 'यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः' अर्थात् जिससे अभ्युदय, ऐश्वर्य और मोक्ष की प्राप्ति हो, वही धर्म है । यह लक्षण शाक्त-धर्म में पूर्णतया घटित होता है ।

अब तीसरे मन्त्र से श्री परा शक्ति के अस्त्र-शस्त्रों को नमस्कार करते हुये उसके पर उत्कृष्ट सर्व-व्यापक तथा योगियों के हृदय में वास करनेवाले स्वरूप को ऋषि बताते हैं—

प्रवतो नयान्नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः । विद्यते धाम परमं गुहा यत्समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥ ३ ॥

अर्थात् उच्च पदवी पर आरूढ़ योगियों को तू गिराती नहीं है, प्रत्युत उन्हें अपनी सायुज्य पदवी प्रदान करती है । हम तुझे नमस्कार करते हैं । तेरे अस्त्र-शस्त्र को भी हमारा नमस्कार है, जिन्हें तूने असुरों के विनाशार्थ ग्रहण किया है । तेरा परम धाम गुप्त हृदय-प्रदेश है, उसमें आधार-रूप से तू छिपी हुई है, उसे हम जानते हैं ।

अहं-मम-रूप अविद्या-जन्य संसार में ही लगे रहनेवाले जीव बार-बार जन्म-मरण-रूप संसार में आते रहते हैं, क्योंकि उनके सुख का आधार क्षणिक, विनाशी, आपात रमणीय यह संसार ही है । उन्हें शाश्वत शान्ति नहीं मिलती । अतः मुमुक्षु इससे विरक्त होकर विद्या का अनुसरण

करता है। उसी को 'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्-धाम परमं मम' (गीता) वाली उक्ति से कहा गया है। 'सोऽध्वनः पारमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते' (कठ०) अर्थात् ब्रह्म को प्राप्त होने पर फिर संसार में मुमुक्षु नहीं आता। इसी तत्व को 'प्रवतो न पात्' इस पद से कहा गया है। यही शक्ति का परम धाम है।

सप्तशती में कहा गया है—'मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्त-समस्त-दोषैर्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवी' (अ० ४८) अर्थात् समस्त अविद्या-दोषों से रहित होकर मोक्षार्थी मुनिगण विद्या-रूप से तुम्हारा ही अभ्यास करते हैं। वह विद्या तुम हो। जब जब भक्त-समुदाय असुरों से पीड़ित होता है, तब तब असुरों के विनाशार्थ श्री आदिशक्ति का आविर्भाव होता है, जिसे किसी-न-किसी प्रकार से सभी आस्तिक-समुदाय मानता है। 'इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरि-संक्षयम्'—इस मन्त्र से यही बात कही गयी है। उस समय अनेक तेजः-स्वरूप अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर श्री अम्बा प्रकट होती हैं। इसे ही सूक्त में 'हेतये च तपुषे' पद से कहा गया है। सप्तशती में भी श्री भगवती के अस्त्रों से रक्षा की प्रार्थना की गयी है—'खड्ग-शूल-गदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके। कर-पल्लव-सङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः' (४-२६) अर्थात् हे अम्बिके, खड्ग, शूल, गदा आदि जितने तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे तू हमारी सब ओर से रक्षा कर।

हे देवि, समुद्र परमात्मा में अभेद-सम्बन्ध सामरस्य-भावापन्न होकर तू छिपी हुई है, उसे हम उपनिषद् द्वारा जानते हैं। 'मम योनिरप्सु अन्तः समुद्रे' देवी सू० ७—इस मन्त्रांश में भी 'समुद्र'-पद आधारार्थों में व्यवहृत हुआ है। सायणाचार्य ने इसका अर्थ परमात्मा ही किया है—'समुद्रवन्त्यस्माद्-भूतानि इति समुद्रः परमात्मा' अर्थात् सब प्राणी-समूह जिससे प्रकट होते हैं। इसलिए परमात्मा को समुद्र कहते हैं। बहुत लोग इस मन्त्रांश से ब्रह्म को कारण तथा शक्ति-तत्व को कार्य समझते हैं, परन्तु यह भ्रम है। गीता में ब्रह्म का योनि-कारण शक्ति को भी कहा गया है—'मम योनिर्महद्-ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्'।

वास्तव में निमित्त की अपेक्षा से ब्रह्म, शक्ति दोनों के परम-कारणत्व का व्यवहार होता है। 'यो वेद-निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति (तै० उ०) इस उपनिषद्-वचन में भी मन्त्रार्थ को विशद किया गया है।

उक्त तीनों मन्त्रों द्वारा शक्ति-तत्व का भौतिक, दैविक तथा आध्यात्मिक रहस्य बताया गया है। वैदिक, तान्त्रिक एवं पौराणिक मतों में जो शक्ति का स्वरूप माना जाता है, उसका अभेद दिखलाया गया है। जो लोग पौराणिक एवं तान्त्रिक सिद्धान्त को वेद-बाह्य अनार्यों की वस्तु बताते हैं तथा उसमें वर्णित काली आदि शक्ति-रूपों की पूजा को अनार्य-पूजा कहते हैं, उन्हें वैदिक सिद्धान्त को विचारपूर्वक देखना चाहिये तथा समझ-बूझकर सम्मति देनी चाहिये।

वैदिक साहित्य में अनेक बार 'देवी' या 'शक्ति' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'प्राणो वा अपानो व्यानस्ति स्रो देव्यः' (ऐ०-२-४) अर्थात् यहाँ पर प्राण, अपान और व्यान इन तीनों को देवी बताया है। अपान, व्यान भी प्राण के ही रूप हैं। वास्तव में प्राण ही शक्ति है। इसी को लोक में 'दम' कहते हैं। इसीलिये ऐसी कहावत है कि दम से ही आदम है अन्यथा मुर्दा है। इसी प्राण, अपान और व्यान को पौराणिक सिद्धान्त में महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती कहते हैं। महाविद्या-क्रम में यही काली, तारा, षोडशी कहलाता है।

'ऋतैषकः प्रजापतिरतद्-देव्यश्च कश्च तस्माद्-देविकाः पंच भवन्ति पञ्च हि दिशः' (श० ६-५-१-३६७) अर्थात् प्रजापति (परमात्मा) और उसकी देवियाँ पाँच हैं, क्योंकि दिशायें पाँच ही हैं। पञ्चाम्नाय में ही देवी-देवताओं का समस्त विभाग है। दीक्षा-काल में दिशा-क्रम से ही घट-स्थापन करके पाँच आम्नायों का उपदेश होता है। षष्ठाम्नाय अवराम्नाय कहलाता है या अनुत्तराम्नाय। उसका उपदेश अमुख्य होने से पाँच में ही गतार्थ होने से पाँच ही कहा गया।

ता वा एता देव्यः दिशो ह्येता (देव्यः दश दिशः)
(श० ६-५-१-३१)

अर्थात् ये दशों दिशायें ही दश देवियाँ हैं। महा भागवत में ऐसी कथा आयी है कि जब सती अपने पिता दक्ष के घर जाने लगीं, तब उन्हें श्री शङ्कर ने रोका। तब अपने भयानक रूप से प्रकट होकर उन्होंने अपना महत्व दिखाया। श्री महादेव उसे न देख सकने के कारण उठकर भागे। तब श्री भगवती ने दशों दिशाओं में अपने दश महाविद्या-रूप धारण कर श्री शङ्कर को रोका था। इस कथा का मूल उक्त श्रुति ही है। दशों विद्याओं की लय-भावना की भी कथा वहीं पर कही हुई है। सभी रूपों का लय श्री काली रूप में किया गया है। यही रूप सब शक्ति-रूपों में मुख्य है। इसका एक स्वतन्त्र ही विज्ञान है। काली-रूप की प्रधानता क्यों है, यह लेख के बाहर की बात है। अतः पुनः किसी प्रसङ्ग में इसकी चर्चा हो सकेगी।

रुद्र-रूप शिव की ही ये शक्तियाँ हैं। रुद्र अग्नि को कहते हैं—'अग्निर्वै स देवः तस्यैतानि नामानि शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः पशूनां पती रुद्रोऽग्निरिति' (श० १-७-३-८) अर्थात् उस देवी को शर्व, पूर्व देश वाले उसी को भव, वाहीक-देशोद्भव पशुपति रुद्र अग्नि आदि नामों से कहते हैं।—रुद्रो हि वै एष देवानामशान्तः सङ्क्षितो भवति' (को० १६-४) देवताओं में रुद्र अशान्त अग्नि-तत्व है। इसीलिए रुद्र-रूप में ही संहार युद्ध आदि कार्यों के लिये मुख्यतः इसकी उपासना की जाती है। रौद्र-रूपों में काली-रूप प्रधान होने से मुण्डक उपनिषद् में 'काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सु-धूम्रवर्णा। विस्फुलिंगिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त-जिह्वा' प्रथम निर्दिष्ट है। 'पञ्च-शून्य-स्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्मृता' इस तन्त्र-वाक्य द्वारा भी काली की प्रधानता सिद्ध होती है। 'चतुर्युगानां राज्ञी वै कालिका परिकीर्तिता। विद्या-राज्ञी सिद्ध-विद्या कलौ शीघ्र फल-प्रदा' (शक्तिसंगम तन्त्र)। 'कलौ काली विशिष्यते' आदि वचनों से काली-रूप की प्रधानता ज्ञात होती है।

रौद्र-रूप की प्रचण्डता को लक्ष्य करके शिल्प-विज्ञान के अनुसार शक्तियों की मूर्ति-कल्पना की गयी है। वैदिक साहित्य में शक्ति-तत्व की प्रचण्डता का निरूपण अनेक स्थानों में कहा गया है। इस सूक्त के चौथे मन्त्र में यही तत्त्व तथा संगठन-शक्ति का रहस्य बताया गया है, जो सप्तशती मध्यम चरित की कथा का मूल है। इसी रहस्य को लेकर मार्कण्डेय पुराण में विस्तार से कहा गया है—यां त्वा देवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम्। सा नौमृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥ ४ ॥ अर्थात् जिस महाशक्ति को 'धृष्णु'—सब देवों को कष्ट देनेवाले महिषासुर को मारने के लिये युद्ध में स्तुति द्वारा सब देवताओं ने बाण अर्थात् उसके नाश के साधन-रूप से बनाया था, वह देवी हमारी रक्षा करे। हे देवि, तुझे नमस्कार है, क्योंकि युद्ध में तेरी ही स्तुति होती है।

सप्तशती के दूसरे अध्याय में यह कथा है कि महिषासुर दैत्य ने एक समय अपने आतङ्क से देवताओं को

पीड़ित किया था। देवताओं ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश के साथ मिलकर एक महान् तेज प्रकट किया। वह तेज दिव्य स्त्री-रूप में प्रकट हुआ। अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र को उसे सब देवताओं ने प्रदान किया। सभी के अङ्ग-रूप से वह महाशक्ति बनी थी, जिसे कहा गया है—'निःशेष-देव-गण-शक्ति-समूह-मूर्त्या' अर्थात् समस्त देवताओं के शक्ति-समूह से ही वह मूर्ति बनी थी। इसे ही सूक्त में 'यां त्वा देवा असृजन्त विदथे गृणाना' इन रहस्यमय पदों से कहा गया है। उस सामूहिक शक्ति ने महिषासुर को युद्ध में मारा, जिसे अकेले ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी नहीं मार सके थे। सप्त-शती के तीसरे अध्याय में यह प्रसंग स्पष्ट रूप से कहा गया है। चौथे अध्याय में उसी महत्वपूर्ण महती देवता की स्तुति भी देवताओं ने की है, जो अपूर्व है। 'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्' ऋ०वाले वैदिक एकता के रहस्य को प्रकट करने के लिये ही यह मध्यम चरित्र की कथा लिखी गयी है।

शक्ति-तत्त्व के समस्त रहस्यों के प्रकट करनेवाले इस (सप्तशती) ग्रन्थ-रत्न में यदि संगठन-शक्ति का निरूपण न होता, तो एक बड़ी भारी कमी रह जाती, क्योंकि 'सङ्घे शक्तिः' वाली युक्ति ही सर्वश्रेष्ठ शक्तिवाद की उक्ति है। 'यूनियन इज़ स्ट्रेंग्थ—डिवाइडेड वी फ़ाल' परम तत्व है। इसी का निदर्शन यह मध्यम चरित है। इसलिये सप्तशती के तीनों चरितों में यह चरित सबसे श्रेष्ठ है। प्रथम उत्त चरित का पाठ अकेले करना मना है, परन्तु मध्यम चरित के विषय में यह बात नहीं है। इसका पाठ अकेले भी कर सकते हैं—

'एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह' (वै० रहस्य० ३२)

अर्थात् एक मध्यम चरित के पाठ से ही पूर्णता हो जाती है, परन्तु प्रथम, उत्तर चरित का पाठ अकेले न करे इत्यादि।

इसी एकता के विषय में वेद कहता है 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (यजुः ४०-४) अर्थात् एकता देखनेवाले ज्ञानी-समाज को शोक कहाँ और मोह कहाँ। युद्ध के समय ही एकता का परम उपयोग होता है। इसीलिये 'विदथे गृणाना' कहा गया, क्योंकि युद्ध ही महान् आपत्ति है। स्वार्थ-परायणता के ही समय युद्ध होता है। अप-स्वार्थ में ही फूट का बीज होता है। किसी देश, संस्कृति, जाति के पतन में व्यक्ति-गत अप-स्वार्थ की प्रधानता रखकर सामूहिक स्वार्थ की उपेक्षा करना होता है, जिसे इतिहासज्ञ पूर्ण रीति से जानते हैं। ऐसे समय महालक्ष्मी ही सुमति प्रदान कर अपने राष्ट्र-भक्तों की रक्षा करती है। अतः उसकी स्तुति-पूजा को खूब स्मरण रखना चाहिये।

भारतीय युद्ध में प्रवृत्त अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण ने इसीलिये गीतोपदेश के प्रथम श्री दुर्गा भगवती की स्तुति करने को कहा था, जिसे भीष्म-पर्व में बड़े ही सुन्दर रूप में अङ्कित किया गया है। जो इस महाशक्ति की उपासना करता है, उसे फिर और किसी की उपासना करने की आवश्यकता नहीं रहती। इसीलिये सूक्त के तीसरे मन्त्र में कहा गया है—'नम एवास्तु तुभ्यम्' अर्थात् तुम एक ही को हमारा नमस्कार है। इस सूक्त में सात बार 'नमः' शब्द का प्रयोग होने से संसार की संचालिका सप्त-मातृका-रूप को तथा निवृत्ति की सप्त-भूमिका को नमस्कार किया गया। 'तस्यै ते नमो अस्तु देवि'—इस स्त्री-लिंग-वाचक 'तस्यै' 'देवि' पदों से यह सूक्त शक्तिवाद का ही पोषक है, यह निःसंदिग्ध रूप से सिद्ध हो जाता है। 'देवि'-पद सम्बोधन का होने से प्रत्येक सूक्त के मन्त्र से इसका सम्बन्ध है।

युद्ध के प्रसङ्ग में एक बात कहना रह गयी कि विजय प्राप्त होने पर अभिमान का होना स्वाभाविक है, जिसे

बताने के लिये केन उपनिषद् की यक्ष की आख्यायिका बतायी गयी है। असुरों पर विजय प्राप्त करने पर देवताओं के अभिमान को निवृत्त करने के लिये साक्षात् कृपामयी हेमवती उमा का आविर्भाव उपनिषत्कार ने क्या ही सुन्दर रूप से लिखा है, जिसका दूसरा उदाहरण वैदिक साहित्य में मिलना कठिन है। ब्रह्म-विद्या ही अभिमान-अहंकार आदि रहित शाश्वत शान्ति को देने-वाली है। उसके बिना लौकिक विजय फिर पतन का हेतु हो सकती है। इसीलिये उपनिषत् का उपसंहार 'ज्येये स्वर्गे प्रतितिष्ठति' रूप में किया गया है। आजकल केवल ऐहिक भावना से प्रेरित होकर ही शक्ति की उपासना एवं साधक लोग परिश्रम करते रहते हैं, जिससे यह परम रहस्य लुप्त होता जा रहा है। अतः श्री जग-न्माता से बार-बार यही प्रार्थना है कि अपनी सभी सन्तानों के अन्दर अपने सभी रहस्यों को प्रकट कर कल्याण करें।

उपर्युक्त सूक्त की विवेचना यथामति की गयी। इन मन्त्रों में और भी बहुत से रहस्य होंगे, क्योंकि वेदों के विषय में यह कहा गया है कि 'तपसा मन्त्राणामने-केऽर्था भवन्ति' अर्थात् तप से वेद-मन्त्रों के अनेक अर्थ हो जाते हैं। शक्ति-विषय के और भी कितने सूक्त हैं, जिनमें शाक्त-साधना के रहस्य भरे हुये हैं। विद्वानों का यह कर्तव्य है कि उसे प्रकट कर शाक्त-साधना को विशद करें तथा जनता को कल्याण-मार्ग की ओर ले चलने का सदुद्योग करें। यह तो एक नमूना मात्र है, समय हुआ तो अन्य सूक्तों के अर्थों पर भी यथामति प्रकाश डाला जायगा। ॐ शम्।

श्रीभवानी-स्तुति

भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्न वदनैः, प्रजानामीशानस्त्रिपुर-मथनः पञ्चभिरपि।
न षड्भिः सेनानीर्दश-शत-मुखैरप्यहि-पतिस्तदान्येषां केषां कथय कथमस्मिन्नवसरः॥ १

हे भवानी! औरों की बात ही क्या, अखिल सृष्टि के रचयिता प्रजापति ब्रह्मा जी अपने चारों मुखों से भी तुम्हारी स्तुति नहीं कर सकते; त्रिपुर-हर शङ्कर पाँच मुख रहते हुये भी इस विषय में मूक होकर रह जाते हैं; छः मुख-वाले कार्तिकेय भी मन मारकर बैठ जाते हैं! इन सबकी कौन कहे, हजार मुख-वाले शेष जी भी मन मसोसकर रह जाते हैं, परन्तु तुम्हारी स्तुति नहीं कर पाते। कोई करे भी तो कैसे? तुम्हारे गुणों की थाह पावे, तब न! फिर मेरे जैसे जीव की तो सामर्थ्य ही क्या, जो इस काम में हाथ डालने का दुःसाहस करे!

त्वदन्यः पाणिभ्यामभय-वरदो दैवत-गणस्त्वमेका नैवासि प्रकटित-वराभीत्यभिनया।
भयात् त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छा-समधिकं, शरण्ये! लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ॥

हे शरणार्थियों को शरण देनेवाली! तुम्हें छोड़कर जितने दूसरे देवता हैं, वे अपने हाथों से ही अभय और वरदान का काम लेते हैं। इसी से तो उन्होंने अपने हाथों में अभय और वरद-मुद्रा धारण कर रक्खी है। तुम्हीं एक ऐसी हो, जो इन दोनों ही मुद्राओं के धारण करने का स्वाँग नहीं रचतीं। रचने भी क्यों लगीं, तुम्हें इसकी आवश्यकता ही क्या है? तुम्हारे दोनों चरण ही आश्रितों को सब प्रकार के भयों से मुक्त करने तथा उन्हें इच्छित फल से अधिक देने में समर्थ हैं। तुम्हारे हाथ सदा शत्रु-संहार के काम में ही लगे रहते हैं। भक्तों के लिए तो तुम्हारे चरण ही पर्याप्त हैं।

शक्ति-तत्व या ब्रह्म-विद्या

प्रस्तावित विषय इतना दुरूह और कठिन है कि बड़े-बड़े विद्वानों के लिये भी इस पर पूर्ण विवेचन करना कठिन ही नहीं, अपितु सामर्थ्य के बाहर मालूम पड़ता है। ऐसी अवस्था में मेरे जैसे अल्पज्ञ का उद्यत होना उतना ही हास्यास्पद है, जितना कि एक बौने के लिए चांद पकड़ने की चेष्टा। तथापि जैसे आकाश में पक्षी अपने सामर्थ्यानुकूल उड़ा ही करता है, उसी प्रकार अपनी लेखनी को पवित्र करने के लिये श्री दयामयी की दया के भरोसे अपनी बुद्धि और वाग्विभवानुकूल श्री करुणामयी जगदम्बा के गुणानुवाद की ओर अग्रसर हो रहा हूँ। यदि अपने इस प्रयास में शतांश भी सफल हुआ, तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूंगा।

इस समीक्षा में यत्र-तत्र 'तन्त्र' और 'आगम' शब्द व्यवहृत होंगे, इसलिये प्रस्तावित विषय पर विचार करने के पूर्व 'तन्त्रशास्त्र' अथवा—'आगम-शास्त्र' पर दो शब्द कह देना अनुचित न होगा।

'तन्त्र' का व्यापक अर्थ है—शास्त्र, सिद्धान्त, अनुष्ठान, विज्ञान, विज्ञान-विषयक ग्रन्थ इत्यादि। जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने 'सांख्य' को भी तन्त्र कहा है। महाभारत में न्याय, धर्मशास्त्र, योग आदि के लिये भी 'तन्त्र' शब्द प्रयुक्त हुआ है। तन्त्र का दूसरा नाम आगम भी है। इसकी व्याख्या श्री वाचस्पति मिश्र ने इस प्रकार की है—

आगम वह शास्त्र है, जिसके द्वारा भोग और मोक्ष के उपाय बुद्धि में आते हैं। यह व्युत्पत्ति आगम और नगम (वेद) के भेद से कही जा रही है। कर्म, उपासना और ज्ञान के स्वरूप को निगम बताता है और उसके साधनभूत उपायों को आगम सिखाता है। विस्तारार्थं तन् धातु से औणादिकं ष्ट्रन् के योग से 'तन्त्र' शब्द बना है। इसका अर्थ वह शास्त्र है, जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाता है। अथवा जो साधकों का त्राण (रक्षा) करता है, उसको 'तन्त्र' कहते हैं। शैव सिद्धान्त के 'कामिक आगम' में तन्त्र की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है—'तत्व मन्त्र से युक्त अनेक अर्थों का जो प्रकाश करता है, उसे तन्त्र कहते हैं।'

'तन्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्'—जिस शास्त्र के पठन-पाठन तथा अनुसरण से ज्ञान की वृद्धि होती है, उस शास्त्र का नाम तन्त्र है।

तनोति विपुलानर्थान् तत्व-मन्त्र-समन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधार्यते॥

मन्त्रशास्त्र में मन्त्र का विस्तार से वर्णन रहता है और उससे तत्सम्बन्धी ज्ञान का बोध होता है। ब्रह्म तथा प्रकृति का तत्व क्या है, इसका विचार तन्त्रशास्त्र में किया गया है। किस प्रकार दुःखों के पंजे से मुक्ति प्राप्त हो सकती है; किस प्रकार ऐहिक सुख-सम्पद् मिल सकता है तथा किस उपाय से पारलौकिक परमानन्द एवं मुक्ति का लाभ हो सकता है; किस यत्न से मनुष्य देवता-स्वरूप बन सकता है—इन सब विषयों का सुन्दर प्रशस्त पथ तन्त्रशास्त्र में दिखलाया गया है।

अद्वैत वेदांत में जिस अद्वैत की उत्पत्ति प्रबल युक्तियों के सहारे सिद्ध की गई है, उसकी व्यावहारिक योजना आगम में बताई गई है। इस प्रकार आगमों की

मूल भित्ति निगम ही है। साधारणतया यह भ्रम लोगों में व्याप्त है कि तन्त्र केवल शक्ति या शक्ति के उपासकों के धर्मग्रन्थ का नाम है, पर ऐसा नहीं है। दूसरे आगम-सम्प्रदायों के भी तन्त्र हैं, जैसे शैव-तन्त्र, वैष्णव-तन्त्र आदि। ये तन्त्र आगम-शास्त्र हैं।

सनत्कुमार संहिता में लिखा है—

श्रौताश्रौत-विभेदेन द्विविधस्तु शिवागमः।
श्रुति-सार-मयः श्रौतः सः पुनर्द्विविधो मतः॥
स्वतन्त्र इतरश्चेति स्वतन्त्रो दशधा पुरा।
तथाष्टदशधा पश्चात् सिद्धान्त इति गीयते॥
इतरः श्रुति-सारः तु शत-कोटि प्रविस्तरः।

अर्थात् शैवागम के दो प्रकार हैं—श्रौत और अश्रौत। श्रौत श्रुति-सार-मय है और यह दो प्रकार का है—स्वतन्त्र और इतर।

श्रुति शब्द तन्त्र-वाचक भी है। कहा गया है—श्रुति दो प्रकार की है-'वैदिकी' और 'तांत्रिकी।' महर्षि हारीत ने कहा है—

'अथातो धर्म व्याख्यास्यामः। श्रुति-प्रमाणको धर्मः। श्रुतिस्तु द्विविधा वैदिकी तांत्रिकी च।'

कुछ तन्त्र वेदानुकूल हैं और कुछ स्वतन्त्र। तन्त्रोक्त आचरणों का अधिकार चारों वर्णों को है। वेद ज्ञान-कांड-प्रधान होने के कारण उनका अधिकार सबको नहीं है, किन्तु तन्त्र क्रियात्मक होने के कारण तन्त्रोक्त आचार का पालन सभी वर्ण के लोग कर सकते हैं। विशेष सुविधा यह है कि सात्विक, राजस और तामस तीनों प्रकार के तन्त्र उपलब्ध हैं। सात्विक आगमों को 'तन्त्र', राजस को 'यामल' और तामस को 'डामर' कहते हैं। जिस साधक को जिस भाव की प्रबलता होगी, वह उसी भाव के आगम का आश्रय करेगा। तीनों का फल एक ही है। साधक क्रमशः सात्विक भाव में परिणत होकर अन्त में मुक्त हो जाता है।

तांत्रिकों का सिद्धान्त है कि आगम-स्वरूप को जान लेने से ही मुक्ति होती है। वैदिक सूक्तों में भी यही बात समझाई गई है। श्री-सूक्त, लक्ष्मी-सूक्त, रात्रि-सूक्त, देवी-सूक्त, उषनस-सूक्त, नारद-सूक्त आदि इसके प्रमाण है।

दूसरे विचार के अनुसार तन्त्र दो प्रकार के हैं—आगम और निगम। आगम के कहनेवाले श्री शङ्कर भगवान् और निगम की कहनेवाली भगवती आनन्दभैरवी हैं। आगम की श्रोत्री भगवती हैं और निगम के श्रोता आनन्दभैरव हैं—

गुरु-शिष्य-पदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः।
प्रश्नोत्तर-पदैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत्॥

वेदोक्त शक्ति-तत्व की व्याख्या-स्वरूप ही तन्त्र ग्रन्थ हैं और वे क्रिया-प्रधान हैं। पञ्चाग्नि-विद्या, मधु-विद्या आदि वेदोक्त-विद्याओं का विधान तन्त्र में ही पाया जाता है।

तन्त्रों में तीन भाव और सात आचार वर्णित हैं। पशु-भाव, वीर-भाव और दिव्य-भाव तथा वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। इनमें से कौल सबसे श्रेष्ठ कहलाते हैं। चन्दन और कीचड़, पुत्र और शत्रु में जो भेद नहीं जानता; घर और श्मशान में तथा सुवर्ण और तृण में जो भेद नहीं करता; वही कौल है (भाव-चूड़ामणि)। यह अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार ब्राह्मी स्थिति का ही लक्षण है। कौल-मार्ग में शिव-शक्ति का सामरस्य बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। शक्ति ही अन्तर्मुखी होने से शिव है और शिव ही बहिर्मुख होने से शक्ति है, यही वह सामरस्य है। कौल-मार्ग में एक समय-मार्ग भी है, जो सर्वोपरि माना गया है। समय-मार्गी ब्रह्म-स्वरूप ही हो जाता है और यही कौल-मार्ग की विशेषता है। तांत्रिक सम्प्रदाय में भाव-शुद्धि का ही सबसे अधिक महत्व है और उसी से सिद्धि प्राप्त होती है।

तांत्रिक साधना दो प्रकार की है--बहिर्याग और अन्तर्याग। बहिर्याग में गन्ध, पुष्प, धूप-दीप, विल्व-पत्र और नैवेद्य के द्वारा पूजा की जाती है। अन्तर्याग में इन बाह्य वस्तुओं की आवश्यकता नहीं होती। मानसोपचार के उपकरण स्वतन्त्र हैं। इसमें पञ्चभूतों के द्वारा उपचार-कल्पना करनी होती है। पृथ्वी-तत्व को गन्ध, आकाश-तत्व को पुष्प, वायु-तत्व को धूप, तेजस्तत्व को दीप, रसात्मक जल-तत्व को नैवेद्य के रूप में कल्पित कर इस पंचोपचार द्वारा पूजा करनी पड़ती है। इसी का नाम अन्तर्याग है। षट्-चक्रों का भेद ही इस अन्तर्याग का प्रधान अङ्ग है।

जैसा पहले कहा गया है, प्रस्तावित विषय 'शक्ति-तत्व' है। शक्ति तत्व 'शक्ति' और 'तत्व' दो शब्दों से बना सामासिक शब्द है। रूढ़ कर्मधारय समास होने से इसका अर्थ होगा 'शक्ति-रूप तत्व' अथवा 'शक्ति ही तत्व' है और षष्ठी तत्पुरुष समास होने से इसका अर्थ होगा 'शक्ति का तत्व।' कोई भी समास क्यों न हो, इस सामासिक शब्द का यथार्थ अर्थ जान लेना आवश्यक है। सच तो यह है कि इन दोनों शब्दों का यथार्थ अर्थ मैं नहीं जानता, न जानने की क्षमता ही रखता हूँ और न इनके लिये मेरे जानते कोई यथार्थ पर्यायवाचक शब्द ही है। तथापि यथा साध्य इस पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जा रही है।

'तत्व' से साधारणतः वह वस्तु समझी जाती है, जिसका खंड अथवा विनाश न हो। भारत के प्राचीन विचारानुसार इस सृष्टि में 'तत्व' पाँच हैं, जैसे पृथ्वी, जल आदि। वैज्ञानिक अनुसंधान से पता चलता है कि जल आदि भी इस अर्थ में 'तत्व' नहीं हैं, क्योंकि ये भी दूसरी-दूसरी वस्तुओं से बने हैं, जैसे जल हाइड्रोजन और आक्सिजन नामक दो वाष्पों के संयोग से बना है। गवेषण करने पर मालूम होता है कि शक्ति अर्थात् एनर्जी ही वह वस्तु है, जिसका खंड अथवा विनाश नहीं होता है। इसी प्रकार 'अक्षर' शब्द का भी अर्थ है-जिसका क्षर अर्थात् विनाश वा खंड न हो। इसीलिये अ, आ, इ आदि को अक्षर कहते हैं, क्योंकि इनका भी खण्ड नहीं होता है और जब हम इससे भी आगे बढ़ते हैं, तो पाते हैं कि वास्तव में 'ब्रह्म' ही वह पदार्थ है जिसका यथार्थ में विनाश अथवा खंड नहीं होता। इसीलिये ब्रह्म को 'अक्षर' वा 'अक्षर-ब्रह्म' भी कहते हैं। इस प्रकार 'ब्रह्म' 'तत्व' कहा जा सकता है और जैसा ऊपर कहा गया है, 'शक्ति' अथवा एनर्जी को भी तत्व कह सकते हैं। यह सही भी है, लेकिन प्रश्न उठता है कि आखिर 'तत्व' उस पदार्थ को क्यों कहते हैं, जिसका खण्ड अथवा विनाश न हो? इसलिये 'तत्व' शब्द का यथार्थ शब्दार्थ जान लेना परमावश्यक हो जाता है।

हम लोग 'तत्वमसि' इस श्रुति-वाक्य से प्रायः बहुत कुछ परिचित हैं। इसका अर्थ साधारणतया यही होता है कि 'वह तुम हो'। यहाँ 'तत्' अथवा वह शब्द 'परब्रह्म-परमात्मा' के लिये आया है। अब 'ब्रह्मत्व' अथवा 'ब्रह्मपन' के अर्थ में इस 'तत्' शब्द की भाववाचक संज्ञा 'तत्व' होगी। इसीलिये यह निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि इस 'तत्' शब्द की भाववाचक संज्ञा 'तत्व' है, जिसका साधारण अर्थ है और होगा 'ब्रह्मत्व' वा ब्रह्मपन' अर्थात् अक्षर, अखण्डनीय, अविनाशी, अनादि, अनन्त, सत्य, सर्व-व्यापी, सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान् आदि।

अब 'शक्ति' शब्द का भी वास्तविक अर्थ जान लेना उचित है। 'शक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है--

ऐश्वर्य-वचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्ति परिकीर्तिता॥

अर्थात् 'श' कहते हैं ऐश्वर्य को और 'क्तिः' कहते हैं पराक्रम को। इस प्रकार 'षडैश्वर्य-पराक्रम'-स्वरूप को तथा दोनों की देनेवाली को 'शक्ति' कहते हैं।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि 'शक्ति-तत्व' का अर्थ है 'शक्ति का तत्व' अर्थात् शक्ति का 'ब्रह्मत्व' अथवा 'शक्ति' अर्थात् ऐश्वर्य—पराक्रम-स्वरूप तत्व अर्थात् ब्रह्मत्व। दूसरे शब्दों में 'शक्ति-तत्व' का अर्थ यह है कि शक्ति ही तत्व अर्थात् ब्रह्मत्व है अर्थात् शक्ति सत्य, सनातन अविनाशी परमात्मा वा ब्रह्म है इत्यादि। इसी तथ्य का निदर्शन करना इस छोटे से प्रवचन का लक्ष्य है।

वैष्णव और शैव दोनों दर्शनों में 'शक्ति' पदार्थ ब्रह्म-पदार्थ में अन्वित समझा जाता है। उसमें प्रधानता ब्रह्म की है, शक्ति-पदार्थ गौण है। परन्तु साधारणतया शाक्त-मत से 'शक्ति' मुख्यतया स्वतन्त्र है। प्रत्यभिज्ञा-सूत्र में कहा है-

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्व-रूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्यत्तदा चक्रस्य सम्भवः॥

अर्थात् जब वह विश्व-रूप धारण करनेवाली परा-शक्ति अपनी इच्छा से अपना स्फुरण करती है, तब संसार-चक्र की उत्पत्ति होती है। कार्य-कारण-भाव से सारे पदार्थों को एक परा-शक्ति ने ही व्याप्त कर रखा है। इसीलिये श्रुति कहती है--

ईशावास्य सिद्धं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
यजु ४०—१

अर्थात् जो कुछ नाम-रूपात्मक जगत् इस संसार में है, उसे उस ईशा परा-शक्ति (ईशाया-वास्यम्) ने व्याप्त कर रखा है। इसी के अनुसार सप्तशती में कहा गया है—'देव्या यया ततमिदं जगदात्म-शक्त्या' इत्यादि।

कार्य तथा कारण दोनों ही शक्त्यात्मक हैं। शक्ति के सहारे ही कारण कार्योत्पादन करता है। शक्ति-शून्य पदार्थ किसी भी कार्य का कारण नहीं बन सकता—

शक्तिश्च कारणस्य कार्य-नियमार्था नान्या कार्य-कारणाभ्याम्।
(शंकर-भाष्य)

इन प्रमाणों से शक्ति कारणवाद सिद्ध होता है। यही शक्ति पदार्थ शिव-शक्ति-रूप धारण कर जगत् का अभिन्न निमित्तोपादन कारण है। इसे ही परा-वाक् या सांविदी कला भी कहते हैं। इसका यह रूप मन-वाणी से अगोचर स्व-संवेद्य है। इसी से शाक्त तथा शैव मतों में माने जाने-वाले छत्तीस तत्वों का आविर्भाव होता है।

षट्-त्रिंशत्तत्वात्मा तत्वातीता च केवला विद्या।

अर्थात् छत्तीस तत्वों का रूप धारण करनेवाली महा-शक्ति तत्वों से केवल शुद्ध स्वरूपवाली भी है। श्रुति में कहा है—

या प्राणेन सम्भवति अदितिर्देवतामयी गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत एतद् वैतत्।
(कठ २-४-७)

अर्थात् परमात्मा के साथ समस्त देव-मयी अदिति आदिशक्ति समस्त प्राणियों की बुद्धि-रूप गुहा में स्थित है। (यमराज-नचिकेता-सम्वाद)

बीज के भीतर जैसे वृक्षोत्पादिका शक्ति अन्तर्निहित रहती है, वैसे सृष्टि से पूर्व परमेश्वर में भी सृष्ट्युपयोगिनी शक्ति अव्यक्त भाव से वर्तमान थी। शक्ति के प्रकाश वा व्यक्तावस्था से भिन्न सृष्टि और कुछ भी नहीं है।

शक्ति-कारणवाद वेदान्त-सूत्रों में भी महर्षि व्यासदेव ने माना है—'अक्षराम्बरान्तं धृतेः' तथा 'सा च प्रशासनात्' (वे० अ० १, ३, १०, ११)। इन सूत्रों का भाष्य आचार्य भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्य जी ने विशुद्ध रूप से शक्तिवाद के ही अनुकूल किया है। शक्तिवाद के प्रतिपादक चारों वेदों में अनेक प्रसङ्ग हैं। देवी-सूक्त, रात्रि-सूक्त आदि ऋग्वेद में; कृत्या, राष्ट्री, विद्युत्-सूक्त अथर्ववेद में और ताण्डक, ब्राह्मण, सामवेद-संहिता तथा यजुर्वेद (शुक्ल-कृष्ण) के अनेक मन्त्रों आदि में स्फुट रूप से शाक्त-सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है।

कितने ही दार्शनिक शक्ति-तत्व को कारण नहीं

मानते हैं। उनके मत से निरपेक्ष ब्रह्म-कारणवाद ही समस्त है। शक्ति के बिना ब्रह्म-कारणवाद असंगत है। इसलिए कहा है--

तत्वारूढः स भगवान् शिवः परम-कारणम्।
शिवः सर्वस्य कर्तेयं शक्ति-कारणमुच्यते॥

अर्थात् तत्वारूढ भगवान् शिव तथा शक्ति ही जगत् के कर्त्ता तथा कारण हैं। सृष्टि के लिये उन्मुख दोनों तत्वों के आदि समागम को ही महाविन्दु कहते हैं। इसी से नाद-तत्व व्यक्त होता है। वही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूप धारण कर लेता है। 'एकोऽहम् बहु-स्याम्'—ऐसा श्रुति में कहा गया है। आनन्द-रूप लीलार्थ ही यह शिव-शक्ति-मय सारा विश्व चेष्टा कर रहा है। कार्य-कारण का अभेद होने के कारण यह जगत् ब्रह्म-रूप ही है। 'एकोऽहम्' यह वाक्य शब्द-ब्रह्म एवं सामरस्य शिव-शक्ति-रूपात्मक अद्वैत का एक सा ही बोध कराता है। जिस पराशक्ति ने सारी सृष्टि-रचना की है, वही प्रत्येक शरीर-धारी के शरीर में कुण्डलिनी-रूप से विद्य-मान है। आधार-चक्र में सोये हुए सर्प के समान साढ़े तीन फेरे में इसका स्वरूप है। जब तक वह सोयी रहती है, तब तक जीव की अज्ञानावस्था है। इसके जागने पर ही यथार्थ ज्ञान होता है। सद्गुरु की कृपा के द्वारा परा-शक्ति का मन्त्रात्मक स्वरूप दीक्षा-तत्व के साथ अनुग्रह-रूप आधार प्राप्त करना साधक को अविद्या की परिधि से निकालने के लिये प्रधान उपाय है।

संसार के प्रत्येक पदार्थ में तत्तत्कार्य-सम्पादन की शक्ति है, तभी उसका मूल्य है। अनन्तान्त कार्योत्पादिका शक्ति से सम्पन्न ही परमेश्वर होता है। न्यून-शक्ति-सम्पन्न ईश्वर होता है। जितना शक्ति-साहित्य होता है, उतना ही जीवत्व आता है। अधिकाधिक शक्ति-साहित्य में ईश्वरत्व आता है। निर्गुण, निराकार, निर्विकार कूटस्थ ब्रह्म अनन्त शक्तियों की केन्द्र-भूता महाशक्ति से संबलित होने पर ही विश्व की सृष्टि, पालन, संहार आदि में समर्थ होता है। यदि शक्ति-संवलन न हो, तो शिव भी सृष्टि आदि में असमर्थ, अशक्त, शव-मात्र रह जाता है, अतएव ईश्वर का ईश्वरत्व भी शक्ति-मूलक है, जिसके सम्बन्ध से ही कूटस्थ चेतन ईश्वर बनता है। उसके महत्त्व को कौन कहे!

शक्ति और शक्तिमान दोनों का यही अभेद सम्बन्ध रहता है। प्राणियों की वांछित वस्तुओं में रूप, जय, यश और शत्रु-पराभव अभीष्ट होते हैं। यह सब निश्छल-भाव से माता से ही माँगे जाते हैं—

रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।

इसलिये सुरासुर सभी अपने मुकुट-किरीट के रत्नों से माता के चरण-पीठ का वन्दन करते हैं। श्रीकृष्ण ने भी भक्ति-पूर्वक उनकी स्तुति की और श्रीरामचन्द्र ने भी उन्हीं की आराधना कर लङ्केश्वर रावण पर विजय पाई।

जिस प्रकार विष्णु और शिव एक हैं, उसी प्रकार शक्ति भी उनसे अभिन्न है। एक ही परम-तत्त्व के विभिन्न नाम हैं। जैसे शिव हैं, वैसी दुर्गा हैं और जो दुर्गा हैं, वही विष्णु हैं। जिस प्रकार विष्णु और शिव को विभिन्न शास्त्रों ने परब्रह्म, परमात्मा, सृष्टि-कर्त्ता, सर्व-व्यापी बतलाया है, उसी प्रकार शक्ति को भी बतलाया है।

देवताओं ने भगवती से पूछा—'हे महादेवि! आप कौन हैं?' भगवती ने उत्तर दिया, 'मैं ब्रह्म-रूपिणी हूँ। प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् मुझसे ही उत्पन्न हुआ है। मुझ और ब्रह्म दोनों में सदा एकत्व है, भेद कभी नहीं है। जो वह है, सो मैं हूँ और जो मैं हूँ, सो वह है। भेद भ्रान्ति से कल्पित है, वस्तुतः नहीं है।' (देवी भागवत)

इसी प्रकार असंख्य प्रमाण हैं, जिनसे भगवती का निर्गुण परब्रह्म-स्वरूप और उनका सगुण निराकार सृष्टि-कर्त्ता-स्वरूप सिद्ध है।

'सत्व-रजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः'—इन तीनों गुणों के द्वारा ही तीन देवताओं को अर्थात् सत्व से विष्णु को, रज से ब्रह्मा को और तम से रुद्र को उत्पन्न कर भगवती जगत् का पालन, सृजन और लय करती है।

सृजसि जननि देवान् विष्णु-रुद्रान् मुख्यान्।
तौ स्थिति लय-जननं कारणस्येक-रूपा॥

यही विषय बह्वृचोपनिषद् में इस प्रकार है—

देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत्
.....तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्। विष्णु-रजीजनत.....सर्वमजीजनत्। सैषा पराशक्तिः।

प्रकृति और पुरुष ही परमेश्वर और परमेश्वरी हैं। दोनों वास्तव में एक हैं और इनकी एकता का ज्ञान ही योग की परम सीमा है। प्रकृति देवी है और पुरुष शिव है। दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध वैसा ही है, जैसे वाणी और शब्द का। महाकवि कालिदास ने कहा है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ-प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ॥

भक्त कवि-श्रेष्ठ गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

गिरा अर्थ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
वन्दौं सीता-राम पद, जाहि परम प्रिय खिन्न॥

दूसरे शब्दों में सगुण ब्रह्म धर्मी है और शक्ति उसका धर्म। जिस प्रकार अग्नि का धर्म अग्नित्व है। दाहिका शक्ति और प्रभा-रूप अग्नित्व धर्म ही अग्नि की शक्ति है। इसी प्रकार ब्रह्म में अवस्थित समष्टि-रूपा अनन्त शक्ति ही ब्रह्म का धर्म या शक्ति है। धर्म ही धर्मी का परिचायक है। वस्तुतः धर्मी अर्थात् सगुण-ब्रह्म या शिव अकर्त्ता है और धर्म अर्थात् शक्ति ही कर्त्ता है। ब्रह्म-रूप धर्मी में आश्रित धर्म या शक्ति जड़ नहीं है और न जीव है—परन्तु चिति अर्थात् चिद्रूपा है। शक्ति-सूत्र में इसी चिति शक्ति को ही स्वतन्त्र रूप में विश्व की उत्पत्ति का कारण बताया है—

चिति स्वतन्त्रा विश्व-सिद्धि-हेतुः।

श्री श्री चण्डी में कहा है कि 'चिति-रूपेण या कृत्स्नमेतद्-व्याप्य स्थिता जगत्' अर्थात् जो चिति-रूप में इस समग्र जगत् में व्याप्त होकर अवस्थान करती है।

निर्गुण ब्रह्म में शक्ति अप्रबुद्ध अवस्था में निहित रहती है। सृष्टि की उन्मुख अवस्था में शक्ति का विकास होना प्रारम्भ हुआ है, अतः शक्ति धर्म है और ब्रह्म है धर्मी। शक्ति और शक्तिमान में कोई भेद नहीं है। अतएव शक्ति ब्रह्म से भिन्न पदार्थ नहीं है।

योगवाशिष्ठ रामायण में कहा गया है कि श्री वशिष्ठ जी ने श्री रामचन्द्र जी से कहा—

'हे राम! मैंने जिसे चिदाकाश शिव कहा है, उस भैरव की मनोमयी स्पन्द-शक्ति को ही तुम 'माया' वा 'काली' जानो। यह माया शिव से अभिन्न है। पवन और पवन-स्पन्द जैसे एक पदार्थ हैं, उष्णता और अनल जैसे एक पदार्थ हैं, उसी प्रकार चिन्मय शिव और उसकी स्पन्द-शक्ति माया भी सर्वदा एक हैं कदाच् पृथक् नहीं हैं। स्पन्द द्वारा जैसे वायु का अनुभव होता है, उसी प्रकार यह शिव नामक शान्त चिदात्मा भी यथोक्त माया द्वारा लक्षित होता है और किसी भी उपाय से वह लक्षित नहीं होता। इस शान्त चिन्मय शिव को ही तत्वज्ञ लोग वाङ्-मन का अगोचर 'ब्रह्म' जानते हैं। 'स्पन्द-शक्ति' शिव की इच्छा-शक्ति है। वह इच्छा-रूपिणी स्पन्द-शक्ति ही जीव के जीवन-रूप से परिणत होने के कारण—'जीवात्मा' नाम से, सृष्टि का मूल-कारण होने से 'प्रकृति' नाम से कही जाती है। यह प्रणव का सारांश शक्ति है। इस कारण इसका नाम 'उमा' है। जो लोग इसका गायन करते

हैं, इसका जप करते हैं, वे परमार्थ को प्राप्त करते हैं। इसलिये इसका नाम 'गायत्री' है; सर्व-जगत् को प्रसव करने के कारण इसका नाम 'सावित्री' है; सर्व-ज्ञान-दृष्टि-धारा इसी से प्रवाहित होने के कारण इसका नाम 'सरस्वती' है और गौराङ्ग होने के कारण 'गौरी' कही जाती है। महाकाली महा-प्रलय-काल से सम्बन्ध रखती है। अतएव वह कृष्ण वर्ण की है, वह शिव पर इसलिये आरूढ़ है कि शक्ति मृत विश्व के ऊपर विराजमान है। शत्रु-संहार की शक्ति भयावह होती है, इसीलिये काली की मूर्ति भयावह है। शत्रु-संहार के बाद योद्धा का अट्टहास भीषणता के लिये होता है। अतः महाकाली हँसती रहती है।'

वेद में शक्ति को ही कल्याण-रूप 'शिवा-तनु' कहा गया है—

'या ते रुद्र शिवा-तनूरघोरा पाप-काशिनी तया तस्तन्वा शान्त-मया गिरिशं ताभिचाकशीहि।'

(य० १६-२)

अर्थात् हे रुद्र, आपकी कल्याणकारी शान्ति तथा ऐश्वर्य आदि को प्रदान करनेवाली जो शिवा (महाशक्ति) तनू है, उसके द्वारा आप हमें निरीक्षण करें। हम सब तेरे पुत्र हैं, हमारा कल्याण (मय) करें। 'अमृतस्य पुत्राः' इस श्रुति-वाक्य से सारा विश्व उसकी ही सन्तति है, यह सिद्ध होता है। 'यद् वै शिवं तन्मयः' (तैत्तरीय उपनिषद्) में भी कल्याणवाचक 'मय' शब्द का व्यवहार किया गया है।

वेदान्त-सूत्र में भगवान् वेदव्यास जी ने—'ईक्षते नो शब्दम्' इस सूत्र के प्रवचन में इसे 'ईक्षा' (ब्रह्म की ईक्षा) कहकर प्रकृति से परा चित् कहा है। यह आद्या शक्ति है। सभी देवियों और देवों की मूल है। सर्वप्रथम मूर्त्ति यही हुई है। यह गुण-संयोजिका शक्ति है। जड़ में चैतन्य ज्ञान की चाबी इसी के हाथ में है अर्थात् ब्रह्म-चैतन्य, जो प्रकाश मात्र है, इसके द्वारा व्यवहार्य होता है। यही इसकी साधिका है। काल का आविर्भाव इसी से होता है। रूप-कल्पना का मूलाधार ब्रह्म (परमात्मा) रूपवान होता है, तो प्रथम इसी रूप में आता है। यह बात तन्त्रों में तो अनेक जगह स्पष्ट रूप से पाई जाती ही है। मनु महाराज जी भी, जो स्मृति के मुख्य कर्त्ता हैं, यही कहते हैं—

आसीदिदं तमो-रूप सम्प्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥

परब्रह्म की यह प्रथम स्फुरण अथवा इच्छा ही महा-शक्ति काली है। इसी तत्त्व को रक्षा, कामना और तप भी कहा गया है। इसको वैष्णव भी मानते हैं। श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में श्री शुकदेव जी कहते हैं—

स्रोन्तः शरीरे अमिते भूत-सूक्ष्मः कालिकांश-शक्ति-मुदिरयाणः।

अर्थात् यह ब्रह्म अपने में भूत और सूक्ष्म तन्मात्राओं को लिये हुए पहले कालिका शक्ति को उद्भावित करता है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि काली शक्ति ही सर्व-प्रथम प्रकट हुई। इसी से इसे आद्या शक्ति कहते हैं। यह शक्ति ब्रह्म का रूप है, ब्रह्म से भिन्न नहीं है। सबका सार यही हुआ कि ब्रह्म का साक्षात्कार हो सकता है, तो भगवती के ही स्वरूप में हो सकता है।

आब्रह्मस्तम्ब-पर्यन्त सभी शक्ति हैं। पराक्रम, तेज, वीज तथा सामर्थ्य शक्ति के जड़-रूप हैं और सर्व-व्यापक चैतन्य शक्ति का सूक्ष्म रूप है, चिन्मय रूप है। कालिकादि विद्या-समूह महाशक्ति की चिन्मयी मूर्त्ति हैं।

सर्व-चैतन्य-रूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि।

परमेश्वर की मलादि असंस्पृष्ट चिच्छक्ति ही चैतन्य नाम से अभिहित होती है—

चिच्छक्ति परमेश्वरस्य विमला चैतन्यमेवोच्यते।

यह सदा स्मरण रखना है कि परा शक्ति परमेश्वर से अभिन्न है।

वस्तु-मात्र ही शक्ति का उद्‌भूत रूप है। जगदीश्वरी निखिल वस्तुओं में शक्ति-रूप से विराजती है। शक्ति-रहित होने पर पदार्थ की सत्ता नहीं रह सकती। इसी कारण कहा गया है—

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद् वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥
(कहीं कहीं 'तदा' के स्थान में 'मया' पाठ है)

वैदिक संहिताओं में उल्लिखित देवताओं में से प्रत्येक ही एक-एक शक्ति का आश्रय है। इस शक्ति के प्रभाव से ही उनका देवत्व है। शक्तिशाली होने के कारण ही देवता मनुष्य के पूज्य हैं। शक्ति के कारण ही अर्थात् शक्ति के विशेष प्रकाश के कारण ही विष्णु, सूर्य, अग्नि प्रभृति देवताओं की इतनी स्तव-स्तुति वैदिक ऋषियों ने की है। साधना-शक्ति वा योग-बल से मनुष्य भी देवत्व लाभ कर सकता है। जीव-जगत् में भी शक्ति के तारतम्य के अनुसार उत्कर्ष-अपकर्ष का विचार किया जाता है। जो जीव जितना शक्तिशाली है, उसका प्रभुत्व तथा उसकी प्रतिष्ठा भी उतनी ही अधिक है। पशुओं में सिंह की शारीरिक शक्ति सबसे अधिक होने के कारण उसको पशु-राज कहा जाता है। शारीरिक और मानसिक दोनों शक्तियों के अधिकारी होने से ही मनुष्य पशुओं के ऊपर प्रभुत्व कर सकता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक-गण भी इसी सत्य पर पहुँचते हैं कि संसार में कोई जड़ पदार्थ नहीं है, बल्कि सभी वस्तुएँ छोटे परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड तथा सूर्यलोक तक, वनस्पति से लेकर मनुष्य तक शक्ति के आगार हैं। एक क्षुद्र परमाणु में वह शक्ति निहित है, जो समूचे ब्रह्माण्ड को भस्म कर डाले; जब छोटे परमाणु में इतनी शक्ति निहित है, तो किसी भी एक व्यक्ति-विशेष में कितनी शक्ति भरी पड़ी है, इसको कौन जान सकता है वा कह सकता है। यह महती शक्ति सर्वत्र व्याप्त है तथा नित्या है। देवताओं के सहायतार्थ या भक्तों के आग्रह पर अथवा योगियों और महान् विभूतियों के अन्वेषण पर यही महती शक्ति कहीं कहीं केन्द्रीभूत होकर प्रकाशित हो जाती है।

तांत्रिक लोग कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत् करके और उस महती शक्ति को केन्द्रीभूत करके यन्त्रों के ऊपर देखते हैं। शाक्त-गण उस महती शक्ति को जगज्जननी मातृ-रूप में प्रत्यक्ष देखते हैं और माता कह-कह स्तव और पूजा करते हैं। प्राचीन महर्षियों ने सारे ब्रह्माण्ड के प्रपञ्च को अपने में देखा और उसका नाम तथा शब्द सुना। उसी को उन्होंने तान्त्रिक यन्त्रों और मन्त्रों में अङ्कित कर दिया है। उन यन्त्रों और मन्त्रों को जागृत करने की प्रणाली भी लिपि-बद्ध कर दी गई है। प्रेम, श्रद्धा, विश्वास और भक्ति के साथ उन प्रणालियों द्वारा पूजा और स्तव करने से वे यन्त्र और मन्त्र जागृत हो जाते हैं और उन यन्त्रों में माता आविर्भूत होकर सेवक को इच्छानुसार वर देती है। जन-साधारण उनका दुरुपयोग न करें, इसलिये ये प्रणालियाँ गुप्त रखी गई हैं। योग्य गुरु शिष्य की योग्यता जाँच कर इन गुप्त रहस्यों को बतलाते हैं।

इस घोर कलि-काल में भी, जब चारों ओर पाप-वृत्ति फैली हुई है, संसार के कल्याणार्थ एक अद्‌भुत पुस्तक अब भी प्रचलित है। यह है 'चण्डी व दुर्गा।' इसके एक-एक मन्त्र (श्लोक) तेज और शक्ति के आगार हैं।

देव्यथर्वशीर्ष में देवी ने अपने को ब्रह्म-स्वरूपिणी कहा है और यह भी कहा है कि प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् मुझसे आविर्भूत होता है। इसलिये जो कहते हैं कि प्रकृति ही देवी है, उनका यह कहना ठीक नहीं। अपनी सर्वात्मा को दिखलाती हुई अपने को ही आनन्द-अनानन्द, विज्ञान-अविज्ञान, ब्रह्म-अब्रह्म सब कुछ बतलाया है। अन्त में कहा है कि मैं ही सब जगत् हूँ। वेद-अवेद, विद्या-अविद्या, अजा-अनजा सब कुछ भगवती ही है।

कालरात्रि ब्रह्म-संस्तुतां वैष्णवीं स्कन्द-मातरम् ।
सरस्वतीमदितिं दक्ष-दुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥

इस मन्त्र से भगवती के प्रसिद्ध अनेक रूपों का वर्णन करके उसे ही 'यह आत्मा है, यह विश्व-मोहिनी है' इत्यादि वचनों से आत्म-शक्ति-रूप भी कहा है। यहाँ आत्म शक्ति का आत्म-रूपा शक्ति भी अर्थ किया जाता है।

भगवती अज्ञेया, अनन्ता, एका अनेका सब कुछ हैं। आचार्य भगवान् शंकर ने भी भगवती के सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों को बड़े सुन्दर शब्दों में कहा है—

'हे देवि ! आपके निमेष-उन्मेष से जगत् की उत्पत्ति और प्रलय होती है। संत लोग कहते हैं कि आपके निमेष से जगत् की प्रलय हो जाती है। इसलिये मालूम पड़ता है कि आप जगत्-रक्षण के लिये निर्निमेष नयनों से भक्तों को देखती हैं।'

सृष्टि की दृष्टि से भी देखा जाय, तो शक्ति बिना सारा प्रपञ्च शव-मात्र ठहरता है। अशक्त व्यक्ति, अशक्त समाज, अशक्त जाति, अशक्त देश भार-भूत ही होता है। अतः शक्ति की पूजा सर्वत्र स्वाभाविक है।

वस्तुतः निर्गुण सत्या सनातनी सर्व-स्वरूपा भगवती ही भक्तानुग्रहार्थ सगुण होकर प्रकट होती है। अगस्त्य-संहिता के अनुसार भगवान् शिव ने श्रीराम के प्रत्यक्ष साक्षात् करने के लिये बड़ी तपस्या और आराधना की। भगवान् राम ने प्रसन्न होकर कहा कि 'यदि मेरा तत्व जानना चाहते हो, तो मेरी आह्लादिनी परा-शक्ति की आराधना करो। उसके बिना मेरी स्थिति नहीं होती है।' यह सुनकर श्री शिव जी ने भगवती महामाया की आराधना की। भगवती ने कृपाकर उन्हें दर्शन दिया। उनके अद्भुत रूप को देखकर उन्होंने अति भक्ति से दिव्य स्तुति की—

वन्दे विदेह-तनया-पद-पुण्डरीकं ।
केशोर-शौरभं समाहृत-योगि-चित्तम् ॥
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनि-हंस-सेव्यं ।
सम्मान-सालि-परिपीत-पराग-पुञ्जम् ॥

शाक्त वह उपासक है, जो अपने में विद्यमान महा-शक्ति का अन्वेषण करता है। वह महाशक्ति प्राणि-मात्र में रहती है। यदि उसमें वह शक्ति न हो, तो कोई भी किञ्चिदपि कार्य करने को समर्थ न हो सकता। हम लोगों के भीतर जो शक्ति विद्यमान है, उसको हम यथार्थतः जानते नहीं हैं। उदाहरण के लिये जैसे एक मनुष्य में लिखने की शक्ति विद्यमान है, किन्तु जब तक उसको लिखने की रीति का बोध न होगा, तब तक वह लिख नहीं सकता। इसी प्रकार हम लोगों में भी जो शक्ति विद्यमान है, वह वही महती शक्ति है, जिसके द्वारा इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, पालन और प्रलय यथासमय होती चली आ रही है, किन्तु हम लोग अन्य विचारों में निमग्न होकर इस महाशक्ति का निश्चय नहीं कर पाते हैं।

इस शक्ति के निश्चय करने का जो उपाय है, वही शाक्त-धर्म है। इस शक्ति को विदित करानेवाला गुरु है। अतः इस शाक्त-धर्म में सबसे प्रथम गुरु का ध्यान और चिन्तन करना पड़ता है। सूक्ष्म विचार से देखने पर यह विदित हो जाता है कि बोध-रूप गुरु और बुद्धि-रूपिणी शक्ति एक ही है। परन्तु दोनों के एक होने पर भी गुरु-रूप का सर्व-प्रथम स्मरण करना नितान्त आवश्यक है। एक बालक जन्म लेते ही अपनी माता का स्तन-पान करता है। यह स्तन-पान उसको किसने सिखाया है? इससे स्पष्ट विदित होता है कि उसके स्तन-पान के तरीके का बोध-रूप गुरु ही स्तन-पान करने की शक्ति-रूप में परिणत होकर उसमें विद्यमान होने का यथार्थ प्रमाण-स्वरूप है। उसी प्रकार हम लोग भी गुरूपदिष्ट मार्ग से शक्ति की उपासना करते-करते उस महती शक्ति को जानकर

स्वयं महा-शक्तिशाली बन सकते हैं।

विचारने की बात है। हम लोगों का सनातन धर्म, जिसमें ब्रह्म-तेज, क्षात्र-तेज और वेद द्वारा हम बलशाली बन सकें आदि निर्दिष्ट हुआ है, वहाँ है? वह यहीं है और शास्त्र भी यहीं हैं। लुप्त नहीं हुए हैं, केवल उपासकों की कमी है, प्रयत्न और संकेत का अभाव है। वह बिना गुरु नहीं मिल सकता। 'कुल-धर्म ही सनातन-धर्म है'—यह उक्ति तो सर्व-विदित है लेकिन कुल-धर्म किसको कहते हैं, यह बात सब लोगों को मालूम नहीं है।

अद्वितीया महाशक्ति-स्वरूपिणी सच्चित् प्रेमानन्दमयी वही देवी देवताओं में भिन्न-भिन्न खण्डित रूप में प्रकट है। खण्ड-खण्ड शक्तियाँ जब स्वरूपतया अखण्ड महा-शक्ति के साथ नित्य-योग-विस्मृत होकर अभिमान-वश स्वरूप-प्राधान्य स्थापन करती हैं, तभी वे क्रमशः निस्तेज हो पड़ती हैं। यह निस्तेज अवस्था भी उनके कल्याण के लिये है। तब वे अपनी दुर्बलता और निस्तेज अवस्था का कारण अनुसन्धान करती-करती फिर उसी महाशक्ति को पाती हैं और उनके साथ युक्त हो जाती हैं।

आज हम लोग यदि अपना-अपना स्वतन्त्र अभिमान त्यागकर शक्ति संहत करें और अपना-अपना तेज एकत्र कर संघ-बद्ध होकर उसे प्रकट करें तथा उसके लिये स्मरण करें, अनुभव करें कि हम सभी लोगों का बल-वीर्य, ऐश्वर्य एक ही महा-शक्ति के लीला-विलास में विचित्र रूप से अभिव्यक्त है, तब महिमामयी सनातनी महाशक्ति सर्व-सौन्दर्य, माधुर्य, वीर्य, ऐश्वर्यमयी मातृ-मूर्ति परिग्रह-पूर्वक हमारे सम्मुख आविर्भूता होंगी।

त्वमेका सर्व-देवानां शरणं भक्त-वत्सले।
पीड़ितान् दानवेनाद्य त्राहि देवि नमोऽस्तुते॥

'दुर्गा सप्तशती' में यह स्पष्ट बतलाया गया है कि भगवती की कृपा से ही सम्यक् तत्व-ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान की प्रशंसा सर्वत्र है; ज्ञान के होने से अज्ञान-मोहादि मिट जाते हैं। ज्ञान-सम्पादन के लिये ही श्रवणादि किये जाते हैं। जप, तप, यज्ञादि सबका परम उपयोग ज्ञान में ही है। परन्तु वह ज्ञान साधारण ज्ञान नहीं है, क्योंकि शब्दादि विषयों का ज्ञान तो प्राणि मात्र को होता है। इससे संसार के मूल-भूत अज्ञान की निवृत्ति नहीं होती है। यही महामाया का प्रभाव है, जिससे सर्वाधिष्ठान, स्व-प्रकाश परब्रह्म का बोध नहीं होता। वही उपनिष-ज्ज्ञान-निष्ठ वशिष्ठ, भरत, विश्वामित्र आदि के चित्त को भी बलात् मोहित कर देती है। वही चराचर प्रपञ्च का निर्माण करती है; वही प्रसन्न होकर मुक्ति प्रदान करती है; विद्या-रूप होकर वही मुक्ति-प्रदा है; अविद्या-रूप से वही संसार-बन्धन का हेतु है; वही भगवान् विष्णु की योग-निद्रा कहलाती है और उनको विश्राम देती है। वही सृष्टि, स्थिति, संहार करती है। वही स्वाहा-रूप से देवताओं को, स्वधा-रूप से पितरों को और वषट्-कार-रूप से श्रौत देवताओं को तृप्त करती है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के मध्य में परा-वाक्-स्वरूपा वही है। वस्तुतस्तु संसार में सत्-असत्, कार्य-कारण, चेतन-अचेतन जहाँ भी जो भी कोई वस्तु है, उस सबकी जो शक्ति है, वह भगवती ही है।

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे मया॥

अध्यात्म रामायण की 'रामगीता' में भगवान् श्री रामचन्द्रजी श्री लक्ष्मणजी को प्रबोध करते हुये कहते हैं—

तस्मात् स्वतन्त्रतां न किमप्यपेक्षते विद्या विमोक्षाय विभाति केवला।

जिन्हें मुक्ति-दाता कहा जाता है, वे श्रीरामचन्द्र जी श्रीमुख से केवल विद्या—भगवती को ही मुक्ति का हेतु मानते हैं। विद्या श्री आद्यादि दश महा-शक्तियों का नाम है। ये दश ज्ञान की मूर्तियाँ हैं। जैसे—

विद्यासि सा भगवती परमा हि देवी' (सप्तशती)
विद्याहमजाहमित्यादि' (अथर्वोपनिषद्)

शक्ति-उपासना का मूल तत्व अध्यात्म रामायण के प्रारम्भिक अध्याय 'राम-हृदय' में खूब सरलतया विशद भाव से दिया गया है। अध्यात्म रामायण वैष्णवों का परम प्रामाणिक तथा पवित्र ग्रन्थ है। गोस्वामी तुलसी-दासजी ने इसी के आधार पर अपने 'राम-चरित-मानस' की रचना की है। उन्होंने अध्यात्म-रामायण के प्रायः सभी विषयों को अपने 'राम-चरित-मानस' में रख दिया है, परन्तु 'राम-हृदय' के तत्वों को छांट दिया है। इस छांट के कारण तत्व से साधारण जनता अनभिज्ञ रही और शक्ति-विषयक बहुत सी भ्रमपूर्ण बातें फैल गईं। वैष्णवों का ग्रन्थ होते हुये भी 'अध्यात्म-रामायण' शाक्त ग्रन्थ है। इसकी कथा का सारांश निम्न प्रकार है—

जब श्रीरामचन्द्र जी रावण को मारकर अयोध्या लौट आये, तब एक दिन श्री रामचन्द्रजी ने जगदम्बा श्री सीता जी से कहा—'हनुमान हम दोनों के बड़े भक्त हैं, वे अब इस योग्य हो गये कि वे अब तत्व को सुन सकें। अतः उनको तत्व बताओ।' श्री सीता जी ने श्री हनुमान जी को समझाया कि 'श्री रामचन्द्र स्वयं कुछ काम नहीं करते हैं। वे निर्मल, निर्विकार, निरञ्जन हैं। मैं ही कुल काम करती हूँ। मैंने ही धनुष को तोड़ा, समुद्र में पुल बनवाया तथा रावण को मारा। रामचन्द्र ने जितने काम किये हैं, वे सब मैंने ही किये हैं' इत्यादि।

शाक्त-मतानुयायी शक्ति की ही उपासना करते हैं, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं निकालना चाहिये कि 'शक्ति' और 'शक्ति-मान' भिन्न-भिन्न हैं। जहाँ शक्ति-मान है, वहाँ शक्ति है और जहाँ शक्ति है, वहाँ शक्ति-मान है। दोनों तत्व अभेद्य हैं।

शक्ति-तत्व की उपासना अनादि काल से संसार में होती आ रही है। लौकिक और पारमार्थिक दोनों विषयों की सिद्धि इससे होती है। इसीलिये आर्य जनता सनातन-काल से ही बल, ऐश्वर्य, ज्ञान, सौन्दर्य, निःश्रेयस आदि तत्वों को अपने धर्म तथा समाज के अङ्ग-रूप में मानती आ रही है। ये सारी वस्तुएँ शक्ति-तत्व के ही रूपान्तर हैं। उपनिषदों में जिन्हें ब्रह्म कहा गया है, वह भी शक्ति-पदार्थ का अभिन्न रूपान्तर ही है। आचार्य भगवत्पाद जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य ने सौन्दर्य-लहरीमें कहा है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेवं देवः खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥

अर्थात् ब्रह्म शक्ति-तत्व-युक्त ही कार्य करने में समर्थ है, अन्यथा वह कुछ भी नहीं कर सकता। अनुभव से भी यह बात प्रत्यक्ष है कि शक्ति-मान ही कोई भी कार्य करते देखा गया है। संसार के इतिहास से भी यह प्रकट है कि संसार में शक्तिशाली का ही सदैव बोलबाला रहा है। आर्य जाति ने अतीत में जो कुछ भी ऐश्वर्य, ज्ञान, तप आदि की उन्नति की थी, उसका मूल कारण शक्ति-तत्व की उन्नति की उपासना ही है, क्योंकि बिना शक्ति के ये सब असम्भव हैं।

शक्ति की उपासना भारत को शक्तिशाली, सर्व-सम्पत्-समृद्ध बना सकती है। सर्व भारतीय धर्म निगमागम-मूलक हैं। भारतीय सभ्यता भी निगम और आगम पर अवलम्बित है। वैदिक ग्रन्थों में निर्दिष्ट ज्ञान का क्रियात्मक रूप अथवा विधानात्मक आचार आगमों का मुख्य विषय है। किसी ने कहा है—'सर्वं-शाक्तमिदम् जगत्' अर्थात् यह समस्त जगत् शाक्त है।

मनुष्य-जन्म का उद्देश्य है अपनी अवस्थाओं पर आधिपत्य और पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना, न कि अपनी अवस्थाओं का दास बने रहना। प्रत्येक मनुष्य में इतनी अलौकिक और महती शक्तियाँ भरी हुई हैं कि वह जैसा चाहे, अपनी अवस्था में परिवर्त्तन कर डाले। विश्वामित्र आदि ऋषि इसके प्रमाण हैं।

शक्ति-उपासना का तात्पर्य यही है कि मनुष्य अपनी

गुप्त अलौकिक शक्तियों को जगाकर और अपनी अवस्था पर आधिपत्य प्राप्त कर ब्रह्म-ज्ञान द्वारा ब्रह्म-शक्ति के आनन्दार्णव में अपने को विलीन कर दे। हम लोगों में अज्ञान-वश यह गलत धारणा हो गई है कि संसार दुःख का कोष है। सत्य यह है कि यह संसार आनन्द पर ही प्रतिष्ठित है। आनन्द ही संसार का तथा प्रत्येक मनुष्य का असली स्वरूप है। दासता, पर-तन्त्रता और दुःख उसका यथार्थ स्वरूप नहीं है। शक्ति-उपासना इसी बात को प्रत्यक्ष कर देती है।

भगवान् शङ्कराचार्य कहते हैं कि ऐसे तो जहाँ भोग है, वहाँ मोक्ष नहीं मिल सकता और जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग की प्राप्ति नहीं होती है; परन्तु कुल-धर्मावलम्बी भगवती के भक्तों के हाथों में दोनों वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।

अतीत के किस युग से हमारी आर्य-भूमि में शक्ति-पूजा प्रचलित रही है, इसे ठीक-ठीक बता न सकने पर भी यह तो ध्रुव सत्य ही है कि वेदोक्त उपासना तथा शक्ति-उपासना दोनों ही सम-कालीन हैं। वैदिक संध्या की त्रय-कालीन मूर्तियाँ--ब्रह्माणी, वैष्णवी तथा रुद्राणी हैं। शक्ति-उपासना ही गायत्री का चरम तात्पर्य है।

यद्यपि 'सर्वे शाक्ता द्विजा' के अनुसार गायत्री की उपासना करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब लोग शाक्त-गणना में आ जाते हैं तथापि कोई अपने को वैष्णव, कोई शैव, कोई सौर, गाणपत्य आदि मानकर तत्तद्देवता की दीक्षा ग्रहण करते हैं। कुछ लोग वेदान्त-ग्रन्थावलोकन से ब्रह्म-ज्ञानी बनकर कर्म-काण्ड का त्याग कर देते हैं, और जनता में ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश देते हैं, जिसके फल-स्वरूप अनेक मत-मतान्तर निकल पड़े हैं। अतएव तीनों वर्णों में विविध मतावलम्बी लोग इस लोक में देखने में आते हैं।

शक्ति-उपासना की खोज संसार के सब वैज्ञानिक अन्वेषणों में प्रधानता रखती है। इसकी तुलना आजकल प्रचलित किसी भी अन्वेषण के साथ नहीं हो सकती। यह भारतवर्ष की विशेषता है, परन्तु दुःख की बात है कि स्वयं भारतवासी इस अमूल्य वैज्ञानिक रहस्य से अनभिज्ञ हैं। इस अमूल्य रत्न का भण्डार भारतवर्ष में रहते हुये भी हम भारतवासी दीन, हीन, मलीन, दरिद्र और आलसी हो रहे हैं। इसी कारण भारतवासी भिक्षा की झोली लिये दर-दर भीख माँग रहे हैं।

शाक्त धर्म की प्राचीनता की पुष्टि जन-श्रुति और परम्परा द्वारा तो निरन्तर होती ही रहती है और उसके प्रमाण में वेदों के सूक्त तथा स्मृति, पुराण, उपनिषदों के अवतरण भी विज्ञ पुरुषों के परिश्रम के फलस्वरूप जिज्ञासुओं के सम्मुख सदैव आते गये हैं। अब एक और भी महत्वपूर्ण प्रमाण आधुनिक खोज के फलस्वरूप विचारार्थ वर्तमान है। सिन्धु-स्थित मोहेन्जोदारो के नाम से प्रायः सभी भारतवासी परिचित हैं। यह वह स्थान है, जहाँ की खुदाई के फलस्वरूप निकले खँडहर के कारण भारतीय संस्कृति का अस्तित्व-काल अत्यन्त पुराने समय में स्वीकृत हो चुका है। इस खँडहर से प्रमाणों की सहायता से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि शाक्त-धर्म वैदिक काल के पूर्व से भारत में वर्त्तमान रहा है।

तन्त्रशास्त्र की किसी-न-किसी रूप में सब धर्मों पर छाप पड़ी है। भारतीय बौद्ध, जैन, पाशुपत, सौर, शैव आदि सम्प्रदायों में तांत्रिक उपासना स्पष्ट दीख पड़ती है। कहा जाता है कि ईसाई, महम्मदीय, पारसी, यहूदी आदि धर्मों में भी तन्त्रों की छाप पड़ी है। बौद्ध भिक्षुओं ने तिब्बत, चीन, जापान, जावा, सुमात्रा आदि देशों में तन्त्र-मार्ग का ही विशेष रूप में प्रचार किया है। तिब्बत में अब भी तन्त्र-ग्रन्थों की सम्पत्ति प्रचुर परिमाण में पायी जाती है।

तान्त्रिक तथा शक्ति-उपासना के ग्रन्थों का भण्डार अपार है। उसमें इतने ग्रन्थ हैं कि जिसकी थाह लगाना

असम्भव है। इन विषयों के ग्रन्थ अभी तक कम छपे हैं। इनके बहुसंख्यक हस्तलिखित ग्रन्थ भारतवर्ष से बाहर चले गये हैं। बहुत से तांत्रिक ग्रन्थ बर्लिन, लेनिनग्राड और लन्दन के पुस्तकालयों में बन्द पड़े हुए हैं। हिमालय के पहाड़ों में भी गुप्तरूप से हस्त-लिखित तान्त्रिक ग्रन्थों का विशाल पुस्तकालय अभी मौजूद है, जिनकी जानकारी कुछ महान् विभूतियों के अतिरिक्त किसी दूसरे को नही है। प्राचीन समय में एलेक्जेण्ड्रिया में तान्त्रिक ग्रन्थों का वृहद् आगार था, जो जला दिया गया। तदनन्तर तक्षशिला तथा नालन्दा के विश्वविद्यालयों में, जो तांत्रिक ग्रन्थों की मालायें थीं, वे भी जला दी गईं और नष्ट-भ्रष्ट हो गईं। आइने अकबरी के अनुसार बहुत प्राचीन अमूल्य तांत्रिक ग्रन्थों का आगार दिल्ली में पहुँच चुका था, जो दूसरे दिन अकबरशाह के दरबार में पहुँचनेवाला था, पर उसी रात में कुल पुस्तकें कहाँ गायब हो गईं या किसने गायब कीं, किसी को पता न चला और बादशाह अकबर हाथ मलते रह गये। फिर भी कुछ महान् विभूतियाँ भारतवर्ष में वर्त्तमान हैं, जो इस पद्धति को जीवित रखे हुए हैं, पर वर्त्तमान जड़वादी सभ्यता में इन महान् विभूतियों का पहचानना कठिन कार्य है।

इस लेख को समाप्त करने के पूर्व ऋषिकेश-स्थित आनन्दकुटीर-निवासी जगत्-विख्यात् परमपूज्य योगीराज श्रीस्वामी शिवानन्दजी महाराज के कतिपय शब्दों को उद्धृत करने के लोभ को मैं संवरण नहीं कर सकता। भक्त-प्रवर स्वामीजी का कहना है—

'शक्ति चिद्-रूपिणी है। वह सच्चिदानन्द-रूपिणी है। वह प्रकृति की विधात्री है। वह स्वयं ही प्रकृति है। वह भगवान् शिव या ब्रह्म की शक्ति है। वह इस संसार-नाटक की सूत्रधार है। वह जगज्जननी है। वह महिष-मर्दिनी है। वह भ्रान्ति नाशिनी है।

देवी भगवान् शिव की शक्ति है। वह जड़शक्ति और चिद्शक्ति है। शक्ति प्रकृति है, माया है, महामाया है, श्रीविद्या है। शक्ति ही ब्रह्मा है। वह ललिता है, वह कुण्डलिनी है, वह राज-राजेश्वरी है। वह त्रिपुरसुन्दरी है। वही दश-महाविद्या है। काली, बगलामुखी, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरी, मातङ्गी, षोडशी, धूमावती, कमलात्मिका, तारा और भैरवी है।

❀ ❀ ❀

शुद्ध माया चिद्-शक्ति है। प्रकृति जड़ शक्ति है।

❀ ❀ ❀

शक्ति-वाद ईश्वर के शारीरिक (सगुण) और अशारीरिक (निर्गुण) रूपों का प्रतिपादन करता है। बिना प्रकृति के ब्रह्म निष्कल है और प्रकृति-सहित ब्रह्म सकल है।

निर्गुण ब्रह्म में शक्ति गुप्त (अप्रत्यक्ष) रहती है तथा सगुण ब्रह्म में वह प्रकट (प्रत्यक्ष) हो जाती है।

मातृश्री की कृपा प्राप्त करने के लिये उसकी उपासना, श्रद्धा, पूर्ण प्रेम तथा आत्म-समर्पण की आवश्यकता है। केवल उसकी अनुकम्पा के द्वारा ही आत्मा का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।'

पूज्यपाद स्वामीजी के इन शब्दों को यदि मैं प्रस्तुत लेख का सारांश अथवा निचोड़ कह दूँ, तो अनर्गल नहीं होगा, ऐसा मेरा विचार है। इन शब्दों के साथ परब्रह्म-स्वरूप आनन्दमूर्त्ति श्रीगुरुदेव जी तथा शरणागत-दीनार्त्त-परित्राण-परायणी सर्वस्यार्त्ति-हरी जगदात्मिका करुणामयी मां के पावन पाद्-पद्मों में सविनय यह शब्दाञ्जलि अर्पण करता हूँ—

सर्व-रूप-मयी देवी सर्व-देवी-मयं जगत्।
अतोऽहं विश्व-रूपां तां नमामि परमेश्वरीम्॥

शक्ति-तत्व (ध्यान-रहस्य)

शास्त्र में कहा है कि वह सच्चिदानन्द परब्रह्म 'रस-रूप' है- "रसो वै सः" या "आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्" 'आनन्द-स्वरूप' है। रस वा आनन्द दोनों पर्यायवाची शब्द हैं, जो एक ही अर्थ को बताते हैं। शास्त्र में पुनः यह भी कहा गया है कि 'आनन्दाध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते' अर्थात् उसी मूल आनन्द से ही इस विश्व की उत्पत्ति हुई है तथा उसी में इसकी स्थिति है और उसी में ही यह लय को प्राप्त होता है। सकल विश्व-मात्र जड़-चैतन्यमय है। भक्ति-मीमांसा-सूत्र में कहा गया है कि परमात्मा रस-रूप है तथा माया जड़-रूप है—'रस-रूपः परमात्मा जड़-रूपा माया।' सच्चिदानन्दमय परमात्मा अवाङ्-मनसा-गोचर—वाणी और मन से परे होकर भी मुमुक्षु-गणों के लिये सत्-चित् और आनन्द—इन तीन भावों के द्वारा उसके स्वरूप का निर्देश किया जाता है।

यद्यपि एक ही अद्वितीय वस्तु इन तीन भावों द्वारा प्रतिपादित की जाती है, तथापि साधक की अवस्था के अनुसार कर्म, उपासना और ज्ञान साधनानुकूल मीमांसाशास्त्र द्वारा तीनों भावों का प्रतिपादन किया जाता है। अर्थात् कर्म-मीमांसा द्वारा सद्-भाव, ब्रह्म-मीमांसा द्वारा चिद्-भाव, तथा भक्ति वा दैवी-मीमांसा द्वारा उसका सत्-चित् से युक्त आनन्द-भाव का प्रतिपादन होता है।

पूर्व-कथित सत्-चित्-जड़-चैतन्य-आनन्दमय ब्रह्म ही द्विधा भूत हो अर्थात् सत्, जो अविनश्वर अनादि अनन्त अपरिवर्तनशील या सदा विकार-विहीन समः सूक्ष्म दृष्टि से, वही मूल जड़-स्वरूप और चित् जो उस मूल जड़ के सहित ओत-प्रोत भाव से जड़ित एकमात्र चैतन्य-रूप या प्रकाश-रूप हो एकार्ध में सत् व जड़ या ब्रह्म-शक्ति या मूल प्रकृति के रूप में समझो तथा द्वितीयार्द्ध में चित् या प्रकाश चैतन्यमय अनादि पुरुष-रूप में द्वैत-भाव में होकर भी विश्व सृष्टि का कारण होता है। फिर उक्त उभय भाव की सम्मिलन-लीला में शुष्क आनन्द-भाव में विकसित होता है। यह आनन्द-शक्ति ही प्रकाश्य भाव से ज्योति के आवरण में कृष्ण-मण्डल या मध्य में रमणीय प्रकृति-मूर्ति है। यही तिमिर-वर्णा काली-स्वरूपा है। ब्रह्म के प्रत्यक्ष चैतन्य-रूप आदि मण्डल में यही विश्व की अन्तः शक्ति कृष्ण-वर्णा सदानंद-मयी महामाया-रूप में प्रकाशित है।

छान्दोग्य उपनिषद् में भी हिरण्मय-पुरुष की वर्णना-प्रसंग में उल्लेख है कि 'अथयं नीलं परं कृष्णं नन्दनः तन् श्यामः' अर्थात् सूर्य-मंडल के मध्य में जो गाढ़ कृष्ण-वर्ण अयः विद्यमान है, वही श्याम व श्यामा है, वही आलोक के मध्य में अन्धकार या छाया-रूपिणी महामाया आनन्द-मयी है। फिर यजुर्वेद के मन्त्र में भी यही प्रसंग है कि—

"तन्मित्रस्य वरुणस्यामि चक्षे सूर्यो रूपं कृण्डुने-द्वेधारूपस्थो अवन्ममन्यद्रुशदस्य याजः कृष्णमन्यद्ध-रितः संभरन्भिन"—

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म की स्थूल या प्रत्यक्ष विभूति सूर्य भी ब्रह्म-शक्ति-पुष्ट होकर निरंतर दो रूपों को धारण कर रहे हैं। उनका एक रूप 'रश्मि' है, जो शुभ्र प्रकाश ज्योतिः है तथा दूसरा 'कृष्ण' अर्थात् सकल वस्तु के आकर्षण-शक्ति-संपन्न हैं। सूर्य की किरण में सकल वस्तु के हरण या आकर्षण की शक्ति गुप्त भाव से वर्त्तमान है। सूर्य अपनी उस किरण-माला के सहित ओत-प्रोत भाव से जड़ित है तथा कृष्ण या श्याम-वर्ण आकर्षण-शक्ति के द्वारा विश्व-ब्रह्माण्ड को अपने से मिला-

कर आनन्दित कर देता है। उसी कारण सूर्य के उदय के साथ-साथ ही प्रकाश और छाया दोनों एकत्र ही दिखाई देते हैं। जहाँ पर आलोक है, वहाँ छाया भी उसकी अनुगता सह-धर्मिणी की भाँति दिखाई पड़ती है, तथा सकल-वस्तु ही आलोक या छाया-पात से ही ज्ञात होती है। चैतन्य-मय आलोक के अन्तर में यह ब्रह्मच्छाया ही साक्षात् आनन्द-मयी श्यामा है या महामाया ब्रह्म की आनन्द-स्वरूपा रूप से विराज रही है। उसके उसी अव्यक्त आनन्द-भाव के ज्ञात हो जाने पर 'ज्ञाना-रूप' साधक के सभी दुःख व भय दूर होकर उसे अक्षय शान्ति व आनन्द प्राप्त हो जाता है।

अनन्त शान्ति और अनन्त ज्ञान की मूल वही आनन्द-मयी महामाया है। त्रिकाल-दर्शी सर्वज्ञ महर्षि व्यास ने उसी अखंड ब्रह्म-विंदु को भेद कर, मंडलाकार उसकी परिधि को भेदकर ज्ञेय वस्तु वेद को भेदकर वेदव्यास-रूप में, विश्व के मूल-कारण ज्ञान तथा शक्ति हैं--इस तत्व को प्राप्त कर पाया था। उसी ज्ञेय वस्तु का प्रथम विकास 'चैतन्य पुरुष निमित्त कारण-रूप' में ज्ञान तथा द्वितीय विकास 'माया व प्रकृति उपादान कारण-रूप' में शक्ति जाननी चाहिये। दोनों में कोई भेद नहीं। दोनों नित्य हैं।

जिस प्रकार प्रकाश को छोड़कर छाया नहीं तथा छाया को छोड़कर प्रकाश नहीं, उसी प्रकार ज्ञान को छोड़कर शक्ति नहीं तथा शक्ति को छोड़कर ज्ञान नहीं। इसीलिये उक्त दोनों कारणों को अक्षुण्ण रखने के निमित्त ही उन्होंने उसी ज्ञेय वस्तु के नित्य संम्बन्ध-युक्त ज्ञान-शक्ति को प्रथम वेदान्त-वाक्य में क्लीवब ताया है—'तयोः साम्ये नपुसंकः' महाभारत में गीता में भी कहा गया है कि वह परम-पुरुष पुरुषोत्तमरूप है, जो जगत्-पिता भक्त-वत्सल भगवान् है। अनन्तर महर्षि मार्कण्डेय के वाक्य में उन्हें करुणामयी जगज्जननी कहा गया है।

व्यास के वेद-सागर-मन्थन के अपूर्व उद्योग से ही इन त्रिविध मूर्तियों का विकास हुआ है, जैसे उसका क्लीव-रूप 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म', 'सर्वं खल्विदं-ब्रह्म', 'तदेव सौम्येदमग्र आसीत्'। उसका पुरुष-रूप 'सोऽका-मयत बहु-स्याम्', 'स ऐक्षत', 'एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषो नार्याम्येष योनिः सर्वस्य' इत्यादि। उसका स्त्री-रूप 'ब्रह्म स्त्री, तस्य हवा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति तानि हवा एतानि त्रीण्यक्षराणि सतीयं (सती-इयं)' इत्यादि श्रुति-वाक्यों से प्रतिपादित हुआ। अतः भक्त साधक अपने साधन-बल से उसके भाव-त्रय या उसके अपूर्व स्वरूप को यथा-समय लक्ष्य कर परमानन्द प्राप्त करता है।

पहिले सगुण वा निर्गुण ब्रह्म के विचार में यह निर्दिष्ट है कि जिससे गुण निर्गत हो, वही निर्गुण और जिसमें गुणों का प्रकाश हो, वही सगुण ब्रह्म की वही सगुण अवस्था ही शक्ति या प्रकृति के नाम से पुकारी जाती है। जब गुणों की पूर्ण साम्यावस्था होती है, तब वही मूल प्रकृति तुरीया शक्ति के नाम से पुकारी जाती है। अनन्तर वही प्रकृति गुणों की वैषम्यावस्था में आद्या शक्ति के नाम से कही गई है। उसकी सगुण वैषम्यावस्था में प्रथम तमोगुण की विष-मता या प्राधान्य होता है तथा उसके साथ-साथ सतोगुण आकृष्ट होकर उसके ऊपर आ पड़ता है। तब वह तमोगुण सत्वगुण द्वारा आवृत होकर उसकी विश्व-सृष्टि की दक्षिण वा अनुकूल सुख-मय क्रिया-वश हो काल या महाकाल नाम से कहा जाता है। अर्थात् वही ब्रह्म-शक्ति या महामाया मूल प्रकृति की स्वरूप आद्या शक्ति से ही प्रथम तमोगुण प्रधान सत्य-युक्त चिद्रूप हो वह ब्रह्म काल या महाकाल के नाम से प्रकाशित होता है। इसी से परशिव सदाशिव-रूप से स्वयं उसी पर-प्रकृति की सृष्टि-लीला के अनुकूल दक्षिण पार्श्व में स्थित हो शुद्ध रज-गुणमयी आद्या की निम्न-रूप में स्तुति करते हैं—

त्वं परा प्रकृतिः साक्षात् ब्रह्मणः परमात्मनः।
त्वत्तो जातं जगत्सर्वं त्वं जगज्जननी शिवे॥
महदाद्यादणु-पर्यन्तं यदेतत् स-चराचरं।
त्वयैवोत्पादितं भद्रे त्वदधीनमिदं जगत्॥

त्वमाद्या सर्व-विद्यानामस्माकमपि जन्म-भूः ।
त्वं जानासि जगत् सर्वं न त्वां जानाति कश्चन ॥

पुनः भक्तगणों पर अतीव कृपा कर माता स्वयं वाग्वादिनी-स्वरूप से देवी-सूक्त में स्वयं 'अहं रुद्रेभिः' इत्यादि वाक्यों में आत्म-प्रकाश कर रही हैं कि—

मैं ही एकादश रुद्र तथा द्वादश सूर्य, त्रयोदश विश्वेदेवों के रूप में जगत् में विचरण कर रही हूँ। मैं ही मित्रावरुण, इन्द्र, अग्नि अश्विनीकुमारादिकों को निज कार्य करने की शक्ति देती हूँ ॥ १ ॥

मैं ही विधाता और असुर-हन्ता चन्द्रदेव को तथा पूषा और भग नामक सूर्य-द्वय को सदा सामर्थ्य देती हूँ और जो याज्ञिक देवता के उद्देश्य से उत्तम द्रव्य और सोम-रस प्रदान करते हैं, उनको अभिलषित धन, रत्नादि मैं ही प्रदान करती हूँ ॥ २ ॥

मैं ही विश्व-ब्रह्माण्ड की अधीश्वरी हूँ, मैं ही भक्त गणों के सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाली हूँ, मैं ही चैतन्य-रूपा महामाया हूँ, मैं ही उपासना-योग्य देवताओं की प्रधान हूँ। ऐसी गुण-शालिनी मैं ही सर्व-रूप में सदा विराजमान हूँ। देवतागण सकल अवस्था में पूजादि जो कुछ भी करते हैं, वह मेरे लिये ही करते हैं। भक्तगण जो जिस समय जहाँ-जहाँ जो कुछ भी करते हैं, मेरे ही लिये करते हैं। मैं ही उसे ग्रहण करती हूँ ॥ ३ ॥

मैं ही प्राणियों की भोजन-शक्ति हूँ तथा दर्शन-शक्ति हूँ तथा स्पन्द-रूपा प्राण-शक्ति या जीवनी-शक्ति हूँ। मेरे द्वारा ही लोक भोजन व दर्शन आदि क्रिया-द्वारा जीवन धारण करता है। हे विद्वान्, यह सब श्रद्धा-द्वारा प्राप्य उपदेश तुम्हें देती हूँ। इसे सावधान हो सुनो ॥ ४ ॥

मैं स्वयं ही आत्म-तत्व-रूप हूँ। यह सब मुझमें ही है तथा सब वस्तुओं में मैं ही विद्यमान हूँ। यह सारी बातों की खान है। इसी तत्व की देवता तथा मनुष्य चिर-काल से सेवा व उपासन करते आ रहे हैं। मैं जिस समय जिसकी इच्छा करती हूँ, उसी को शक्ति-शाली बना देती हूँ। किसी को ब्रह्मा, किसी को तत्व-ज्ञानी नारदादि ऋषि तथा किसी को मन्वादिकों की भाँति मेधावी मानव बना देती हूँ ॥ ५ ॥

ब्रह्म-द्वेषी तथा स्वभाव से ही हिंसक त्रिपुरासुर के वध के निमित्त मैंने ही रुद्र के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दी है। मैं ही भक्तों की रक्षा के लिये युद्ध करती हूँ। मैं ही अन्तर्यामी हूँ तथा मैं ही सर्व-व्यापक-रूप से पृथिवी व स्वर्गादि में व्याप्त हो रही हूँ ॥ ६ ॥

मैंने अपनी इच्छा से ही विकार-जनित जगत् से ऊपर आकाश की सृष्टि की है तथा आकाश से भी उच्चतम प्रदेश में इन्द्रादिकों के भी बोध से अगम्य परमात्मा पर-ब्रह्म की इच्छा-शक्ति ही मेरे आविर्भाव का स्थान है। इसीलिये सभी की कारण-रूपा मैं ही हूँ। सभी कर्मों में अनुप्रविष्ट होकर ध्रुव-लोक-पर्यन्त मैं ही विराजमान हूँ ॥ ७ ॥

जब मैं अपनी इच्छा से जगत् की सृष्टि करती हूँ तब वायु की भाँति प्रवाहित होती हूँ। मैं पृथिवी और आकाश से भी ऊपर रहती हूँ अर्थात् पृथिवी और आकाश इन्द्रिय-गोचर है, उसका विनाश होता है, मैं अतीन्द्रिय हूँ और नित्य हूँ। मैं ही ब्रह्म-स्वरूपा हूँ। मैं अपने ही सामर्थ्य से इच्छा-पूर्वक असीम शक्ति-शालिनी हो रही हूँ ॥ ८ ॥

इस प्रकार पूर्व-कथित ज्ञान और शक्ति में भेद नहीं है। यह ब्रह्म-शक्ति स्वयं अनादि वेद में वाग्वादिनी होकर विज्ञापित कर रही है।

जैसे भी सही, ब्रह्म की वही सत् और चित् अर्थात् मूल जड़ व शक्ति अर्थात् परा प्रकृति व चित् या प्रकाश-

रूपी चैतन्य के समाहार से ही इस विश्व-संसार का सब व्यापार हो रहा है। फिर चित्-स्वरूप पुरुष हो सत्-स्वरूपा प्रकृति शक्ति की लीला को चैतन्य-मय करके प्रकाशित कर रहे हैं। इसी कारण वे बाहर से शव-रूप महाकाल होकर धूम्र-वर्ण (श्वेत और कृष्ण-वर्ण के मिश्रण से ही धूम्रवर्ण उत्पन्न होता है) या तमोप्रधान अर्थात् तमाच्छन्न होकर भी श्वेत शाश्वत रूप में सत्व-गुणावृत्त हो चिद्-भाव में चित होकर पड़े हुये हैं और उन्हीं के हृदय में या हृदय के ऊपर जो गुण प्रधान होकर उन्हीं की आद्या शक्ति सत्भाव में अपूर्व रूप में अतीव उल्लास-विह्वला व सदानंद-युक्ता हो विराज रही हैं, वे पुरुष हैं।

चैतन्य बीज-प्रदायक पिता-रूप में शुभ्रोज्ज्वल प्रकाश वीर्य ही के बल प्रदान करते हैं तथा लीला-मयी महाप्रकृति सदानन्द-मयी होकर उसे धारण करती हैं तथा ब्रह्माण्ड-सृष्टि-रूप में विचित्र भाव में विश्व का प्रसव, उसकी पुष्टि तथा उसका लय भी करती हैं। महाकाल के ऊपर विराजमान होकर सतत लीलामयी वे काली व महाकाली नाम से पुकारी जाती हैं।

वास्तव में शव-रूप महाकाल व आदि-शक्ति प्रथमा महाविद्या काली एक ही वस्तु हैं किन्तु साधक के ज्ञान-लाभ के निमित्त पहिले उन्हें द्विधा-भेद से ही जानना होगा। पुरुष निर्गुण व निष्क्रिय है किन्तु वह चित् या चैतन्य प्रकाश-स्वरूप है। इसी कारण वह शव-रूप श्वेत स्वच्छ स्फटिक के समान शिव-स्वरूप में चित् होकर पड़े हैं और प्रकृति उनसे अभिन्न हुई सत् या नित्य सत्ता-रूप में स्थित उन्हीं के अन्तर-स्थित प्रकाश-सत्ता की सहायता के बिना प्रकाशित नहीं हो सकती, या यों कहिये कि चैतन्य की सहायता से ही प्रकाशित होती है। प्रकृति तो चैतन्य कक्ष-स्थित अव्यक्त गुप्त वस्तु है। वह प्रकाश की ही विपरीत सत्ता है अर्थात् अप्रकाश्य है या अन्तर की वस्तु है। अतः पक्षान्तर में गंभीर छाया या घोर अन्धकार-मयी सर्व-वर्ण-विलोपकारी कृष्ण वर्ण या काला वर्ण है। इसी कारण काली कही गई है। ज्योति के अन्तः-स्थित अनिर्वचनीय कृष्ण विन्दु इसी कारण श्वेत-रूप शाश्वत शिव-हृदय में ही काली-रूप से विकास को प्राप्त हो फिर वे ज्योतिर्मयी-रूप से विराज रही हैं।

शिव-शक्ति का यह अनिर्वचनीय द्विधा भेद ही प्रथम दक्षिण या अनुकूल भाव-संपन्न का प्रथम साधन-लक्ष्य है। प्रथम यह कहा गया है कि दिव्य भाव में उन्नत साधक ही प्रकृति का स्वरूप है और वही एकमात्र पुरुष है अथवा वही पुरुष व प्रकृति का समाहार-भूत ओत-प्रोत भाव से जड़ित ज्ञाता और ज्ञेय रूप से जैसे द्विधा विभक्त है पर है एक ही।

उदाहरणार्थ तुम किसी वस्तु को देखते हो, सुनते हो और उसे गम्भीरता से अनुभव करते हो। तुम्हारा अन्तः-करण उसी भाव में सराबोर हो जैसे तुम उसी भाव में तन्मय हो डूब जाते हो। विचार कर देखो कि उस समय तुम्हारा स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है; तुम तदाकार हो रहे हो; तुम अपने को एक बार ही भूल गये हो। फिर कुछ देर बाद जब वह भाव दूर हो जावे, तो तुम नींद से जगने के बाद ऐसी स्थिति में होओ कि तुमसे कोई पूछे तो उसके उत्तर में जो कुछ तुम कहोगे, वह 'कुछ' तुमसे जैसे पृथक् हो गया होगा। तुम और वह 'कुछ' वस्तु दो हो-ओगे। जब तुम तद्-गत थे, तब एक ही थे; जब पृथक् हुये, तो द्वैत भाव आ गया। ऐसे ही साधक और साध्य साधारणतः दो वस्तु होकर भी साधन के फल से फिर एक हो जाते हैं। तब साध्य-साधक एकाकार हो पुरुष-प्रकृति मिलकर एक अद्वितीय वस्तु में परिणत हो जाते हैं। साधक, यही ध्यान-कार्य तुम्हें एकाग्र भाव से तुम्हारे अभीष्ट देवता के साथ एकाकार बना देगा। किन्तु जब तक ऐसी स्थिति न आवे, तब तक उक्त शिव-शक्ति पुरुष व प्रकृति और भगवान् में सतत द्वैत भाव ही विद्यमान रहेगा। तब

ध्याता व उसके ध्यान की वस्तु में तथा ध्येय में अत्यन्त आनन्द-प्रद पार्थक्य स्वरूप से ही ध्यान-क्रिया विराजमान रहेगी।

'काली कराल-वदना है,' यह कहते ही काली–कालई–वा काल-ई या काल ही समझिये अर्थात् अनादि अनन्त महाकाल ही–अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान रूपी महाकाल ही काली, महाकाली वा दक्षिणा आदि अष्टकाली रूप से सर्वसाधारण साधक की ध्येया या उपास्या है। काल की गोद में सभी को लय होना होता है। महाकाल सृष्टि के प्रारम्भ से ही सभी का कलन या ग्रास करते चले आ रहे हैं। इसी कारण वे महाकाल जगत्-संहारक-रूप से कहे गये हैं। महा-प्रलय-काल में जिन महाकाल का भी जो कलन या निज अंग में लय कर लेती हैं, अतः वे ही कराल-वदना काली कही गई हैं। संसार के उसी अन्तिम दिन में वा अन्तिम लय-लीला के मध्य में भी जो काल को सदाई अर्थात् ईक्षण करती है, वही काल–ई काली है। महाकाल के अन्तर्गत खंड-काल के मध्य में भी जो संसार की नित्य की सृष्टि तथा स्थिति व लय-कार्य जो दिन-प्रतिदिन हो रहा है, इस सबको जो देख रही है तथा अनादि काल से ही काल-संहारिणी काली के कराल वदन में नित्य कितना क्या-क्या जो भी निक्षिप्त हो रहा है, उस सबका जो निरीक्षण कर रही है, वही काली है। संसार की नित्य ही होनेवाली सृष्टि तथा उसकी रक्षा की भाँति ही संहार का कार्य भी उसी के द्वारा ही सम्पन्न होता है। उसके कराल वदन का यही तात्पर्य है। संसारी जीवों का मुख ही स्थूल भाव से उसके कराल वदन की महिमा को प्रकट करता है। कारण कि उद्भिज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज-रूप से एक प्राणी दूसरे का भक्षक बनकर उसके कराल वदन को महिमा को अक्षुण्ण रखे हुये है। तुम भी जन्म से लेकर भाव तक इस छोटे से मुख के द्वारा ही कितना क्या ग्रास कर चुके हो; अपने देह के परिमाण से उसकी तुलना तो करो, वह कितने बड़े परिमाण में होगा! फिर कराल वदन उसकी कठोरता का भी परिचायक है, असुर-नाशिनी मां का मुख-मण्डल उसी आदि देवासुर-युद्ध के अनुरूप ही घोर समर-निष्ठुरता का प्रतीक है। पक्षान्तर में वे अपने प्रिय साधक-वृन्द-रूपी संतान के अतः में स्थित हेय तथा भीषण कामादि रूप आसुरी प्रवृत्तियों रूपी असद् भावनाओं से सदा समर-तत्परा हैं।

किसी अतीत युग में मां दानव-दलों के दलनार्थ आविर्भूत हुई थीं। आज भी वह असुर-नाशिनी माँ की मूर्ति भक्तों के हृदय में देदीप्यमान हो रही है। उनका ध्यान करते ही साधक एकाग्र-चित्त हो अन्तर में एक भीषण कोलाहल का अनुभव करता है। उस कोलाहल का कारण अनुसंधान करते ही दूसरे ही क्षण वह मुमुक्षु साधक यह अनुभव करता है कि देवासुर-संग्राम का वह युग-युगान्तर का व्यवधान आज दूर हो गया है। देवता और दानव दोनों ही माता की संतान हैं, किन्तु देवता-गण ने शांत प्रकृति के सज्जन साधु-गणों की रक्षा के निमित्त ही असुर-गणों को सामरिक भाव से भीषण ताड़ना दे मृत-प्राय कर दिया था। किन्तु वे मरे नहीं, वे फिर मातृ-शक्ति से पुष्ट दैवी शक्ति-संपन्न असुर-गुरु की मृत-संजीवनी के मन्त्र-बल से फिर जीवित हो रिपु-रूप में नयी देह में नयी दानव-शक्ति लेकर मानव इन्द्रियों में पंच-भूतात्मक रूप से निवास कर रहे हैं। मनुष्य देवता और असुर दोनों का ही प्रतीक-स्वरूप है। उसके अन्तः में नियत रूप से देवासुर-संग्राम हो रहा है। भक्त-वत्सला माँ ने इसी कारण अपने प्रिय भक्त-गणों को श्री श्री चण्डी के एकादश अध्याय में ५४ वें श्लोक-रूपी मन्त्र में यह आश्वासन दिया है कि—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरि-संक्षयम्॥

भक्त के हृदय में इस दानवी कोलाहल के होते ही वे अविलम्ब वहाँ अवतीर्ण होंगी। महर्षि मार्कण्डेय ने इसी

प्रसंग को उक्त एकादश अध्याय के प्रारम्भ में ही उठाया है कि—

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्नि-पुरोगमा-स्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्ट-लाभाद्
विकाशि वक्त्राब्ज-विकाशिताशाः ॥

अर्थात् युद्ध में जब माता ने दैत्यराज शुम्भ का निधन कर दिया, तब अग्नि को सम्मुख कर इन्द्रादिक देवतागण असुर-विनाश-रूपी अपने अभीष्ट के पूर्ण होने से प्रसन्न-वदन हो भक्ति-भाव से कात्यायनी महामाया की स्तुति करने लगे कि—'यह महामाया ही ब्रह्म-शक्ति है', यह प्रसङ्ग बराबर चण्डी में व अन्य माहात्म्यों में भी आ चुका है। उपनिषद् में भी इसकी सुन्दर वर्णना मिलती है। केनोपनिषद् में भी ब्रह्म-निर्णय-प्रसङ्ग में तृतीय खण्ड के प्रथम मन्त्र में उल्लेख है—

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्तत ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ।

ब्रह्म ने एक बार ईश्वर के नियमों का उल्लंघन करनेवाले असुरों को परास्त किया था, किन्तु देवता-गण ब्रह्म-कृत उस विजय को अपनी की हुई मानकर अपने को गौरवान्वित मान रहे थे। देवताओं की इस प्रकार अज्ञता देखकर ब्रह्म उनके सामने यक्ष के रूप में प्रकट हुये, किन्तु देवता-गण उन्हें पहिचान न सके। तब अग्नि को ही उनके पास प्रथम भेजा, जैसा कि चण्डी में **'अग्नि-पुरोगमाः'** वर्णन आया है। अग्नि जब उनके सम्मुख गये, तब उन्होंने पूछा, 'आप कौन हैं ?'

तब अग्नि ने कहा कि 'मैं अग्नि जात-वेदा के नाम से प्रसिद्ध हूँ।'

उन्होंने पूछा, 'तुम्हारी क्या शक्ति है ?'

अग्नि ने कहा कि 'विश्व-ब्रह्माण्ड में जो भी कुछ है, सबको मैं भस्मसात् कर सकता हूँ।'

तब उस यक्ष-रूपी ब्रह्म ने एक तृण सामने रखकर कहा कि 'इसको भस्म करो।'

अग्निदेव अपनी सारी शक्ति लगाकर भी उसे भस्म नहीं कर पाये तथा देवताओं के पास वापस आकर बोले कि 'मैं यह निर्णय नहीं कर पाया कि वह कौन है।'

तब वायुदेव को परिचय लेने को भेजा गया। उनसे भी पूछा गया 'आप कौन हैं ?'

उत्तर मिला 'प्रभंजन वायु। संसार में जो भी कुछ है, सबको धारण कर सकता हूँ, उड़ा सकता हूँ।'

उनके सामने भी तृण रखा गया पर सारी शक्ति लगाकर भी उन्होंने उसे न उड़ा पाया। तब विफल-मनोरथ हो वापस आ अपनी असमर्थता प्रकट की। तब देवराज इन्द्र को भेजा गया। इन्द्र जब उनके सम्मुख हुये, तब वे अन्तर्ध्यान हो गये और वहाँ पर आकाश-प्रांगण को अपनी प्रभा से प्रकाशित करती हुई स्त्री-रूपिणी हैमवती उमा प्रादुर्भूत हुईं। देवराज ने उनको वहाँ देखकर उल्लास-भरे वाक्यों से उन महापुरुष का परिचय पूछा। तब हैमवती उमा ने ही उन्हें बताया कि 'यह ब्रह्म हैं। इन्हीं की शक्ति से अर्थात् ब्रह्म-शक्ति से असुर-गण पराजित हुये हैं और उसी से तुम लोग गौरवान्वित हुये हो।'

देवराज इन्द्र ने ही प्रथम उन पुरुषोत्तम को 'ब्रह्म' जाना है। अग्नि, वायु व इन्द्र तीन देवता ही ब्रह्म के समीपवर्ती हुये। अतः ये अन्यान्य देव-गणों से श्रेष्ठ हैं। तथा इन्द्र ने ही सर्व-प्रथम ब्रह्म-शक्ति रूपा हैमवती उमा के वाक्य से ब्रह्म को सर्व-प्रथम जाना, अतः अन्य देवों से वे श्रेष्ठ हुये। इन सब मन्त्रों के आलंकारिक रूप में ब्रह्म के आविर्भाव और तिरोभाव होने का उपदेश जिस प्रकार बिजली की चमक की भाँति पल भर में हो गया, वह उच्च साधक ही अनुभव कर सकते हैं। इस देवता-विषयक उपदेश का नाम आधिदैवत है। इसके पश्चात् उपनिषद् में ब्रह्म-विषयक अध्यात्म या आत्म-तत्व-विषयक उपदेश का प्रसंग है। साधक का मन ब्रह्म को ज्ञान का

विषय बनाना चाहता है किन्तु मन की स्वाभाविक शक्ति वैसी नहीं है। तो भी साधक गुरु-कृपा से उसके उपदेश के अनुसार ही ब्रह्म का बारंबार स्मरण करने का अभ्यास करे, यही ब्रह्म-विषयक आध्यात्मिक उपदेश है।

ब्रह्म-शक्ति के मार्ग से ही ब्रह्म को जानना होगा। यह अग्नि-प्रमुख देवताओं के द्वारा ही प्रथम आदि युग में स्थिर हो चुका है। वह ज्ञान विद्युत् की भाँति शक्ति-योग द्वारा ही साधक के हृदय में अपनी चमक दिखावेगा तथा विकाश होने से पूर्व ही वह असुर-विनाशिनी ब्रह्म-शक्ति महामाया-रूप से अज्ञात भाव से भक्त साधक को आसुरी विघ्न-राशि के विनाश के निमित्त ही आविर्भूत होती है, किन्तु अज्ञानता-वश जीव का चित्त इन्द्रादि देवताओं की भाँति उसे जान नहीं पाता। परन्तु साधन-शक्ति-परिपुष्ट ज्ञानवान् साधक प्रथम उसे उक्त आधिदैवत-भाव से पश्चात् अध्यात्म-भाव से उपलब्ध कर धन्य हो जाता है।

यहाँ पर इस विषय को जरा और स्पष्ट कर कहते हैं। सप्तशती चण्डी तथा केनोपनिषद् दोनों के ही प्रसङ्ग में देवताओं ने अग्नि को ही आगे कर ब्रह्म-शक्ति का साक्षात्कार किया था, इसका तात्पर्य यही है कि अग्नि वा तेज का गुण रूप है। अतः अग्नि—ज्योति की सहायता के बिना उस निर्गुण सत्ता के स्वरूप की उपलब्धि नहीं हो सकती क्योंकि नित्य आकाश में भी सगुण ब्रह्म-ज्योति के उदय होने पर ही विश्व के अन्तर्गत सकल सगुण वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं।

अतः रूप-गुणात्मक ब्रह्म-शक्ति का प्रत्यक्ष रूप भी अग्नि की सहायता के बिना अनुभव नहीं किया जा सकता। अग्नि ही विभिन्न रूपों में निज रश्मि-जाल-रूपी अखण्ड बिन्दु की समष्टि में मण्डलाकार होकर विश्व का प्रकाश करनेवाला है। वायु उसका सहायक है, यद्यपि वह रूप-गुणात्मक नहीं है—स्पर्श-गुणात्मक है। उसे चक्षु से देखा नहीं जा सकता, पर स्पर्श होने मात्र से ही किसी भी वस्तु के परमाणु से संसर्ग होते ही वह उसके अस्तित्व का बोध करा देता है।

इन्द्र इनके राजा हैं। वायु और अग्नि निरन्तर उनके सहायक हैं। इसी कारण इन्द्र ने उपस्थित रहकर भी स्वयं कुछ किया नहीं। व्यष्टि-भाव में केवल कर्म-गुण-मय अग्नि और वायु जब ब्रह्म-वस्तु का परिचय वा ज्ञान-लाभ करने में सर्वथा असमर्थ रहे, तब जैसे समष्टि भाव में इन्द्र उसका परिचय लेने अग्रसर हुये।

साधन-राज्य में 'अग्नि' जैसे वेद या ज्ञान का प्रथम ब्राह्मण-काण्ड या 'जातवेदाः' (जो वेद ही के साथ उत्पन्न हुआ कहा गया है) तथा ब्रह्म-ज्ञानाभिलाषी साधक का चित्त परिशोधक विशिष्ट कर्म-काण्ड भी बतलाया गया है तथा अधिभूत यज्ञ-काण्ड-रूप में साधक के साधन-मार्ग का प्रदर्शक भी कहा गया है और अपनी शक्ति 'स्वाहा' की सहायता से जीव-भाव का भी परिशोधक व परिवर्तक बताया गया है। उसी प्रकार तेजो-रूप में विश्वात्मक स्थूल रूप का आधार आत्म-तत्व कुण्डलिनी-रूप में उसके दर्शन में सहायक भी होता है (अन्तर्भूत-शुद्धि की क्रिया करनेवाले साधक ही इस विषय को हृदयङ्गम कर सकते हैं)।

'वायु' उसके पश्चात् उस अग्नि के सहायतार्थ तैजसात्मक होकर प्राणायाम-योग से आकुञ्चन, आकर्षणादि क्रिया-रूप में उसका परिचालक हो यथार्थ विद्या-तत्व या विद्या-शक्ति का सूक्ष्म भाव में बोधक होता है, किन्तु इन दोनों की आंशिक सहायता होते हुये भी शिव-तत्व या ब्रह्म-तत्व तब भी सम्यक् परिस्फुट नहीं होता। अतः शिव-तत्व के बोधार्थ प्रथम शक्ति-तत्व को सुस्पष्ट रूप से हृदयङ्गम करना होगा।

तेजस्तत्व का आधार मणिपुर है और वायु या प्राण-तत्व का आधार है अनाहत। तेज और वायु की

क्रिया सर्वाङ्ग में सर्वत्र स्थूल भाव में परिलक्षित वा अनुभूत होती हुई भी वह पृथक्-पृथक् भाव से सहायता करती हुई भी सूक्ष्मातीत भावात्मक करणि अङ्ग में उसकी कुछ भी गति नहीं है। अतः उसके द्वारा उपलब्धि न होने पर मूलाधार-भूमि के अधीश्वर या पृथ्वी-चक्र के स्वामी इन्द्र ही की सहायता की आवश्यकता होती है। बिना उसके शक्ति-स्वरूपिणी हैमवती उमा का प्रत्यक्ष परिचय नहीं होता।

इसी कारण उपनिषद् में के पूर्व में वर्णित उपदेश के प्रसङ्ग में कहा गया है कि वह विद्युत् के विकाश-सम अग्नि-प्रमुख दैवी लीला है। उच्च साधक ही उसके मर्म को जान सकते हैं। पश्चात् पञ्चम मन्त्र में उच्चतम साधक को अध्यात्म-विषयक उपदेश का ही इङ्गित किया गया है। इसी विषय में हैमवती उमा शब्द के परिचय में दो-एक बात कही जाती है—

'स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहु-शोभमानामुमां हैमवतीं, तामोवाच किमेतद्-यक्षमिति।'

पूज्यपाद भगवान् शङ्कराचार्य अपने भाष्य में इसकी निम्न व्याख्या करते हैं कि—

'विद्या उमा-रूपिणी प्रादुर्भूत- स्त्री-रूपा स इन्द्रस्तामुमां बहु-शोभमानां विद्यां तदा बहु शोभमानेति विशेषेण सुसम्पन्नं भवति। हैमवतीं हेमकृताभरणवतीमिव बहुशोभमानामित्यर्थः। उमा एव हिमवत दुहिता हैमवती नित्यमेव सर्वज्ञेनेश्वरेण सह वर्तते इति ज्ञातुं समर्थेति कृत्वा तामुपजगाम। स्त्रियमनिरूपिणीं विद्यामाजगाम अभिप्रायोद्-बोध-हेतुत्वात् रुद्र-पत्नी उमा सा हैमवतीव शोभमाना विद्येव विरूपीवः विद्यावान् बहु-शोभते इति।'

यहाँ पर श्रद्धेय भाष्यकार ने 'हैमवती' शब्द का दो प्रकार अर्थ किया है। हैम या सुवर्ण-भूषण-परिहिता हैमवती स्त्री-रूपा ब्रह्म-विद्या वा अर्थाभाव में हिमालय पर्वत की कन्या हैमवती पार्वती, उमा या रुद्र-पत्नी शिवानी हैमवती व उमा शब्द परस्पर युक्त होने से उससे यहाँ पर पार्वती या महेश्वरी का ही अर्थ लेना पूर्ण सङ्गत है क्योंकि देवताओं की इच्छा से ही पूर्व काल में महाविद्या ब्रह्म-शक्ति ही हिमालय में उमा-रूप से आविर्भूत हुई थीं, यह पौराणिक आख्यान है। योगी साधक के निमित्त आधिदैविक और आध्यात्मिक राज्य में इसका सामञ्जस्य बड़ा ही गूढ़ है तथा गुरु-मुखैक-वेद्य है तथापि संक्षेप में दो-एक बात कही जाती है।

भूत-शुद्धि के प्रसङ्ग में स्थान-स्थान पर सुमेरु पर्वत की बात आती है। योग-शास्त्र में साधक के पृष्ठ-देश का मेरु-दण्ड ही सुमेरु पर्वत कहा गया है। पर्वत शब्द का अर्थ पर्व-वान् या अस्थि-पर्व-समूह से दण्डाकार में ग्रथित हुआ वह वास्तव में पर्वत ही है। जिस प्रकार हिमालय पर्वत सतत शुभ्रोज्ज्वलानुसार धवलित किरीट है, उसी प्रकार साधक योगी का भी मेरु-शीर्ष शुभ्र तुषार-वत् मस्तिष्क द्वारा परिपूर्ण है। इसी हिमालय पर्वत-रूपी मेरु-दण्ड की कन्या-रूपिणी जीवनी शक्ति साधक की हैमवती उमा पार्वती या कुण्डलिनी शक्ति है। वे ही मेरु के निम्न क्षेत्र में अर्थात् इस पर्वत के पाद में भू कैलास रूप पृथ्वी तत्वाधार मूलाधार भूमि में स्वयम्भू-लिङ्ग-वेष्ठिता होकर शिवानी-रूप में सदा वास करती हैं।

यही उमा-रूप में जीव की आत्म-शक्ति तथा ईश्वरी कह कर भी बताई गई हैं तथा इन्हें ही साधक की अवस्था-विशेष में अरुन्धती भी कहा गया है। कारण कि सप्त ऋषि या सप्त चक्र अर्थात् मेरु-दंडाश्रित सप्त-ज्ञान चक्रों के साथ साधन-पथ में यही योगी को अनुभूत होती हैं। अतः इसी रूप में प्रसिद्ध भी होती हैं। असली बात यह है कि साधक के अनुभव करने योग्य वही मूल ज्ञान-शक्ति ही आदि माया उमा आदि नामों से प्रसिद्ध हुई है। ब्रह्म-ज्ञान के पथ में देवताओं की भाँति ही साधक

को पूर्वोक्त कोलाहल आसुरी-रूप में जब अनुभव होता है, उसी के साथ-साथ साधना-पथ में उच्च क्रम में प्रथम उसी ब्रह्म-शक्ति-स्वरूपिणी विद्या व महामाया का साक्षात्कार होता है तब वे ही पूर्व-कथित इन्द्रादि देवताओं की भाँति परम-पुरुष भगवान् शिव का प्रथम परिचय देकर साधन के उच्चतम सोपान पर चढ़ने में साधक को मदद करती हैं।

असुर-विनाशिनी वे ही हमारी माता असुर-दल के निमित्त ही जैसे कराल-वदना हैं, वैसे ही भक्तों के प्रति सदा करुणा-मयी हैं। इसी कारण ध्यान में उनके लिये **'हसन्मुखीं सुख-प्रसन्न-वदनां'** तथा **'स्नेहानन-सरोरुहां'** भी कहा गया है। वे एक तरफ कठोर होकर भी स्नेहमयी तथा कराल-वदना होकर भी करुणा-मयी व प्रसन्न-वदना हैं। यह एकीभूत कठोर-कोमलता ही उनका अपूर्व स्वरूप है, जैसा कि चण्डी में भी कहा गया है कि—

चित्ते कृपा समर-निष्ठुरता च दृष्टा।
त्वय्येव देवि ! वरदे ! भुवन-त्रयेऽपि ॥

हे देवि ! तुम्हारे चित्त में अनिर्वचनीय कोमलता-पूर्ण कृपा और बाहर समर-निष्ठुरता का भीषण प्रचण्ड भाव—यह अपूर्व स्वरूप केवल तुम्हीं में दिखाई देता है। तुम त्रिभुवन को वर देनेवाली हो। माता का मुख-मंडल जैसे अनिच्छा से ही केवल कठोर कर्तव्य-कर्म के प्रभाव-स्वरूप असुर-विनाश-कार्य में प्रदीप्त हो रहा है किन्तु उनके हृदय में अतीव स्नेह-पूर्ण वात्सल्य भाव भी उसके साथ-साथ उमड़ रहा है। पुत्र के प्रति भी माता का शासन भी इसी स्नेह-तिरस्कार से परिपूर्ण है।

अतः पहिले जैसा कहा गया है कि साधक ही वास्तव में प्रकृति माता का प्रकृत स्वरूप है या भक्त ही भगवान् का यथार्थ स्वरूप है, पक्षान्तर में भगवान् ही भक्त के प्रत्यक्ष भाव-स्वरूप हैं। अतः दोनों ही एक हैं। अभेद-भावापन्न अद्वैत वस्तु जैसे उपास्य-उपासक-भाव समता में उसका मिलन-सम्भूत अत्यन्त मधुर उपासक-भाव ही जैसे उपास्य मूर्ति में प्रस्फुटित होता है, इसी प्रकार माँ का मुख-कमल भी कैसा अद्भुत योग-युक्त किसी अव्यक्त भाव से परिपूर्ण है। साधक तन्मय होकर ही उस भाव को अन्तर में अनुभव कर सकेगा, वाक्यों द्वारा उसका बोध कराना सम्भव ही नहीं।

आर्यों की सगुण ब्रह्मोपासना के अंगीभूत शिव, शक्ति, विष्णु, गणपति, सूर्य—ये पाँच उपास्य देवता या इनके समस्त रूप व भेद हैं। समस्त देवताओं के हाथों में नाना आयुध व अस्त्र-शस्त्र विद्यमान हैं वा वरामय मुद्रा देखी जाती हैं। साधक अपने अपने इष्ट-देवता की उसी के रूप के ध्यानानुगत भाव से चिन्ता करता है। पहिले ही कहा जा चुका है कि भक्त ही भगवान् का यथार्थ स्वरूप है तथा भगवान् भक्त के ही अन्तः के प्रत्यक्ष भाव-स्वरूप हैं।

भक्त के प्रधान आदर्श भगवान् हैं। उनका ध्यान करते करते वह आत्मोन्नति करते हुये क्रम से देवत्व लाभ कर भगवानत्व भी लाभ करना चाहता है अर्थात् अन्त में सारूप्य व सायुज्य मुक्ति के समीपवर्ती होने की भी इच्छा करता है। इष्ट-देव के कर में स्थित यह आयुध ही भक्त साधक के पूर्व-जन्मार्जित प्रारब्धीभूत आसुरी वृत्तियों के विनाश के पश्चात् दैवी सम्पद् की ओर अग्रसर करा देते हैं।

साधक भूत-शुद्धि द्वारा स्थूल देहावयवों को लय कर चिद्रूप प्राप्त कर अङ्गन्यास, कर-न्यास कर क्रम से व्यापक न्यास कर अभीष्ट देवता के देहानुरूप ही अपनी देह की भावना करता हुआ इष्ट-देवता की प्राण-प्रतिष्ठा कर इष्ट-ध्यान-पूर्वक पूजा प्रारम्भ करता है। सदाशिव ने एक प्रसङ्ग में कहा भी है कि—

देव एव यजेद् देवं नादेवो देवमर्चयेत्।
प्राणायामैस्तथा ध्यानैर्न्यासैः देव-शरीरताः॥

ध्यान का अर्थ केवल संस्कृत का श्लोक पाठ करना ही मात्र नहीं है किन्तु उसके अर्थात् ध्यान-मन्त्रोक्त रूप का चिन्तन करना ही अनेक व्यक्ति ध्यान बतलाते हैं पर स्थूल दृष्टि से वह सत्य होने पर भी ध्यान का केवल इतना ही तात्पर्य नहीं है। पूर्व-कथित देव-देह का लाभ कर अन्तर में उसकी शक्ति की प्रतिष्ठा कर अर्थात् उसकी शक्ति से शक्तिमान हो उक्त आयुधों का रीति से परिचालन करते हुये अपनी आसुरी वृत्तियों के विनाश के लिए बद्ध-परिकर होना होगा।

इष्ट-देवता की दैवी शक्ति आदर्श रूप में सम्मुख विराज रही है। उसी को देखते-देखते उसी के ध्यान में तन्मय होना होगा। केवल एकमात्र पूजा के समय ही उसका ध्यान कर निश्चिन्त होने से काम नहीं चलेगा। नित्य-प्रति अपने इष्ट-देवता के आयुध-समन्वित आदर्श-स्वरूप को सम्मुख रखकर स्वयं भी वैसे आयुध-धारी होकर तुम्हें भी अपनी अन्तः आसुरी प्रवृत्तियों से युद्ध करना होगा। शीघ्र ही तुम दैवी शक्ति की सहायता से समर-विजयी होकर आत्मोन्नति करोगे तथा आत्म-सत्ता या निज स्वरूप की उपलब्धि कर धन्य होओगे। उसी के आदर्श पर अपने को ढालना होगा तथा जब तक यथार्थ रूप में अपने को न जान सको, तब तक ध्यान-वर्णित इष्ट-देवता-रूप के आदर्श पर दृढ़ लक्ष्य रखते हुये साधन करना होगा। उसमें आत्म-नियोग कर उसकी शक्ति, कृपा व सहायता की प्राप्ति के निमित्त नितान्त शरणागत होकर कातर भाव से प्रार्थना करो। सम्पूर्ण रूप से उसी के चरणों में अपने को सौंप दो। निश्चय ही उसकी कृपा प्राप्त करोगे, जैसे कि साधक-प्रवर भक्त रामप्रसाद ने गाया है—

अब तो पार करे ही बनेगी, तारिणि!
तारैगी कैसे न मो कहँ आयो शरण तजैगी!

अपनी पाप-पूर्ण व पापानुष्ठान-पूर्ण आसुरी मूर्ति के प्रति लक्ष्य न करने पर तुम्हें दीनता का अनुभव नहीं होगा। तुममें आर्त-भाव नहीं आवेगा। तुममें भव-व्याधि-जनित भय तथा कातरता भी नहीं आवेगी। अतः तुम वास्तव में शरणागत नहीं हो पाओगे। तुम्हारे अन्तर के अन्तर में वह आवेग कभी स्फुरित नहीं होगा। वह ध्यानस्थ श्लोक केवल मुखस्थ ही रहेगा।

अतः हे मुक्ति-कामी साधक! आत्म-प्रवञ्चना से बचो तथा सतत भावेन उसी के शरणागत हो उसी का अभय वरद हस्त धारण कर उठो। उसी में आत्म-लय कर सर्वत्र आत्म-सत्ता का अनुभव करो और विश्व के प्रति अणु-परमाणु में भी उसके अस्तित्व का अनुभव करो तथा उसको प्रत्यक्ष करो। उसी सच्चिदानन्द-मयी परमा शक्ति के गुण और विभूति की साधना करते हुए उससे अभिन्न परम शिव की अद्वैत सत्ता का अनुभव करते हुए ब्रह्मानन्द में आत्म-विभोर हो जाओ तथा तन्मय हो जाओ।

पहिले कहा जा चुका है कि—'काली' ही कालिका का सुस्पष्ट रूप है। सब वर्णों को या रंगों को अपने में लीन करनेवाला, सर्व वर्णों का अतीत या सबके ऊपर अधिकार करनेवाला, सभी को अपने रूप में मिलानेवाला कृष्ण वर्ण ही है। वही दूसरे अर्थ में सर्व वर्णों का अभाव हेतु घोर अंधकार है। माता ही मानो नित्य रात्रि के घनघोर अंधकार के रूप में जैसे अपने बिखरे काले-काले केशों को ही विस्तार करती हुई अपने काले वर्ण में समग्र विश्व को लीन कर रही है। संसार कुछ काल के लिये मानो महा-श्मशान के रूप में हो गया है। मालूम हो रहा है, मानो संसार के सभी प्राणी शव-रूप महाकाल की गोद में सुख से विश्राम कर रहे हैं। भगवान् शङ्कर एक जगह कहते भी हैं—

श्वेत-पीतादिको वर्णो यथा कृष्णे विलीयते।
प्रविशन्ति तथा काल्यां सर्व-भूतानि शैलजे॥

अतस्तस्याः काल-शक्तेः निर्गुणायाः निराकृतेः।
हिताय प्राप्त-मूर्तेषु वर्णः कृष्णो निरूपितः॥

'श्मशान' शब्द की उत्पत्ति भी ऐसी कही गई है--

समस्तानि च भूतानि प्रलये समुपस्थिते।
शेरतेऽत्र शवी भूत्वा श्मशानं तु ततोऽभवत्॥

महाप्रलय-काल में समस्त भूत ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। इसी कारण 'श्मशान'-शब्द 'ब्रह्म'-पद-वाच्य है। महा-श्मशान के तुल्य ही अत्यन्त भय-कारी शिवा आदि श्वापद जन्तुओं का घोर रव चतुर्दिक् सुनाई पड़ रहा है। उसी भीषण निशीथ-काल में साधक अपने अष्ट-पाश के मोचन के निमित्त माता की साधना में नियुक्त है। साधक जन्म-जन्मान्तर के अर्जित अष्ट-पाशों से छुटकारा पाते ही शिवत्व या 'जीवन्मुक्ति-पद' लाभ करने में समर्थ हो सकता है। उसी 'जीवन्मुक्ति' का लक्ष्य ही उसकी आद्या माँ के मुक्त केश हैं। इसी से वह मुक्त-केशी कहलाई है।

मुक्त-केशी--मुक्त अर्थात् विमुक्त, केशी का अभिप्राय क-ईश-ई है। 'क' व्यञ्जन वर्ण-माला का आदि वर्ण है, जिसका अर्थ मूल कारण वा मूल सृष्टि वा सृष्टि के मूल-कर्ता ब्रह्मा है; ईश—ईश्वर वा महेश्वर अथवा अंतिम लय-कर्ता रुद्र है और 'ई' अर्थात् महाशक्ति है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो महाशक्ति ब्रह्मा और रुद्र की अविरत शक्ति सृष्टि और लय या पुनः पुनः होनेवाली जन्म और मृत्यु-रूप क्रिया से मुक्त करे, वही मुक्त-केशी या भक्तिमान् साधक को जो जीवन्मुक्ति प्रदान करे, वही हुई मुक्त-केशी।

काली मुण्डमाली--उसके कण्ठ में पचास मातृका-वर्ण-रूप मन्त्र ही सर्व-ज्ञानमयी धी-शक्ति के आधार-स्वरूप हैं। कण्ठ विशुद्ध-चक्र का आधार है। इस चक्र का स्थान मेरु-दण्ड के अन्तर्गत कण्ठ से मिला हुआ योग-मार्ग-गम्य गुप्त प्रदेश है। इस चक्र के कमल की १६ पँखुड़ियाँ हैं, जिसके एक-एक दल में अकार से ले अःकार तक १६ स्वर क्रम से विराज रहे हैं। यही मूल वर्ण षोडश-कला के रूप हैं। यही स्वर-वर्ण स्पर्श या व्यापक व्यञ्जन-समूहों के आदि वर्ण या इच्छा-शक्ति-रूपी मूल वर्ण हैं। इन्हीं के त्रिगुणात्मक सत्व-रज-तमो-गुणात्मक प्रभाव से परिपुष्ट हो प्रथम उक्त १६ वर्णों का द्वितीय षोडश-कलात्मक क्रिया-रूप में मध्य वर्ण 'क' से 'त' तक १६ प्रथम व्यञ्जन-वर्णों का विकाश होता है। अनन्तर तृतीय षोडश-कलात्मक ज्ञान-शक्ति के रूप में 'थ' से 'स' तक शेष १६ व्यंजन-वर्णों का विकाश होता है। इस चक्र का देवता 'ह'-बीजात्मक आकाश है। आकाश का ही गुण शब्द है। शब्द अक्षर-रूप वा अक्षर-समष्टि की सहायता से ही सतत प्रकाशित होता है।

बीज मन्त्रार्थ में भी मन्त्रात्मक शब्द वा तदात्मक वर्ण-समूह चित्-शक्ति के सहयोग से ही सदा ध्वनित और प्रकाशित होता है। अतः शब्द-समूह या मातृका वर्ण सदा उस चित् शक्ति पर ही आरूढ़ रहते हैं। जीव चैतन्य की इच्छा से ही यह सहस्रार के अन्तर में प्रथम अंकुरित हो फिर सुषुम्णा मार्ग से अनुलोम-भाव से उतर कर सूक्ष्म रूप से अनाहत क्षेत्र में सतत वास करती है और चित्-शक्ति-मयी कुण्डलिनी की इच्छा, क्रिया और ज्ञान-शक्ति के प्रभाव से प्राण की श्वास-प्रश्वास-रूप वायु के आकार में प्रवाहित होती हुई कण्ठ-स्थित इसी विशुद्ध चक्र के प्रभाव से स्पष्ट सा होती है और कण्ठ के मध्य में होकर जिह्वादि वाक्-यन्त्र के द्वारा बहिर्गत होती है या विकास को प्राप्त होती है। अतः कंठ-देश ही वर्ण-माला-समूह का प्रकाश-स्थान है।

देवी के गल-देश में मुण्डाकार में वह वर्ण-माला-मयी ज्ञान-माला ही सदा सुशोभित है। उसी से संसार का वह ज्ञान-प्रवाह सदा अविरत गति से बहता हुआ मानो शक्ति-स्वरूपिणी रुधिर-धारा की भाँति सर्व-ज्ञान-मयी सर्वात्मिका माता के सर्वाङ्ग में या विश्व-ब्रह्माण्ड में चर्चित

या परिव्याप्त हो रहा है। अर्थात् निगमागमात्मक ज्ञान-अविरत मात्र [illegible]

काली के कर्ण-युगल में शव-युग्म होने का अपूर्व भाव है। ऊपर से देखने पर वह तीक्ष्ण और भयानक है, पर साधक के निमित्त वह बड़ी आशा-प्रद वस्तु है। यही कर्ण-वेध-संस्कार या श्रुति-भेद समर्थ वास्तविक दीक्षा-अभिषेक या यथार्थ-रूपेण यम-नियम त्याग या वैराग्य-पूर्ण कठोर साधनोपदेश ही साधक के कर्ण में प्रथम प्रविष्ट होने पर. वह वास्तव में कर्ण-वेध ही की भाँति प्रथम भीषण ज्ञात होता है, किन्तु धैर्य व विश्वास व श्रद्धा-पूर्ण निष्ठा के द्वारा साधन करते-करते वह कर्ण-भेद करने-वाली तीक्ष्ण विभीषिका भ्रम से दूर हो जाती है तथा उससे आनन्दप्रद शान्ति भी प्राप्त होती है, जैसा कि गीता में भी प्रसंग है—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपम तन्मुखं सात्विकं प्रोक्तमात्म-बुद्धिप्रसादजम्॥

काली की दन्त-श्रेणी—काली के कराल वदन की घोर दन्त-श्रेणी उसकी अविश्रान्त लय-क्रिया का ही एक निदर्शन है। ध्यानान्तर में भी देखा जाता है—"**लोल-जिह्वां दिगम्बरीम्।**" दन्त-समूह द्वारा उसकी लोल-जिह्वा सदा निपीड़ित या दबाई जा रही है। जिह्वा का ही दूसरा नाम रसना है। यही सकल रसों के ग्रहण करने का मुख्य यन्त्र है। जीव की रसना में ही समग्र रसों के ज्ञान-रूपी बिन्दु च्युत होकर वासना व कामना-रूप से कार्य करते हैं।

जीव की सब इन्द्रियों में रसना और उपस्थ दो ही बड़ी भीषण हैं। ये दोनों इन्द्रियाँ दो-दो कार्य करती हैं। जिह्वा जैसे सब रसों के आस्वाद-सुख का उपभोग करती है, वैसे बातें करने के निमित्त भी वह एक अनिवार्य यन्त्र है। उपस्थ भी जिस प्रकार मूत्र-क्रिया का यन्त्र है, उसी प्रकार स्त्री-पुरुष को संभोग-क्रिया में सुख-भोग-रूप बिन्दु-त्याग व बिन्दु-ग्रहणात्मक सृष्टि-यन्त्र भी है। यहाँ पर बिन्दु से वीर्य या जीव के चैतन्य बिन्दु का ग्रहण समझिये। अतः ये दोनों इन्द्रियाँ जीव के काम-रस या वासना या भोग-लालसा के यन्त्र हैं। अष्टाङ्ग-योग-साधना की प्रथम क्रिया वा अभ्यास इन दोनों के ऊपर ही करना होता है। वह यम या संयम क्रिया है।

स्थूल देह की सार वस्तु बिन्दु या वीर्य का धारण या वीर्य-रक्षा तथा सूक्ष्म देह के प्रथम स्तर प्राण-शरीर का सार घन "वाक्-सयम" वा पक्षान्तर में भोजन-संयम भी इसके अन्तर्गत आ जाता है। मन-संयम इन्हीं के अन्तर्गत सूक्ष्म क्रिया है। वह भी प्राणायाम व प्रत्याहार आदि योग की क्रिया के अंगों के अन्तर्गत है। मा उसी-लोल-जिह्वा-निपीडन के द्वारा साधक को सर्व-विध लालसाओं का संयम करने को ही इंगित कर रही है। रक्तबीज-विनाशिनी मा का यह तात्पर्य भी हृदयंगम करना चाहिये कि रक्त अर्थात् सृष्ट्यात्मक मातृ-रजः-बीज अर्थात् जीव-चैतन्य-मय विन्दु या पितृ-वीर्य इन दोनों के मिलने से ही सृष्टि होती है। मा उसी सृष्टि या पुनः पुनः जन्म के विधान की विनाशिनी है। उसके उपासना-फल से साधक जन्म-मृत्यु-रहित हो जाता है। जिसका फिर जन्म नहीं होगा, उसकी मृत्यु ही क्यों होगी? जन्म ही जीव का संसार-भोग के निमित्त भूलोक में आना है तथा मृत्यु प्रारब्ध-भोगान्तर नूतन देह धारण करने को जाना है। मा जीव के उसी आवागमन के पथ का नाश कर देती है।

रसना लाल वर्ण की रक्ताभा लिये होती है। घोर रक्तवर्ण ही यथार्थ रजो-वर्ण है, किन्तु रसना का वर्ण घोर लाल नहीं है। कुछ-कुछ गुलाबी लाली और सफेदी मिला हुआ यह लाल-वर्ण ही रजोगुण का तथा श्वेत सतो गुण का वर्ण है। अतः रजः-प्रधान ईषत् सत्व-मिश्रित भाव ही रसना है। रजोगुण का कार्य क्रिया है तथा सत्वगुण

का कार्य सुख है। अतः सत्वात्मिका क्रिया या उसका आधार या रसना वा वासना जिह्वा के नाम से पुकारी जाती है। वही जीव के संसार के बंधन का कार्य है। उसी को श्वेताभ शुद्ध या अचंचल अपेक्षाकृत स्थायी सत्वगुण से दमन करने का आदर्श प्रदान करने को ही मानो मा अपनी शुभोज्ज्वल दन्त-श्रेणी द्वारा जिह्वा का निपीडन कर रही है।

रजोगुण साधारणतया सत्वगुण से ही दबाया या वश किया जाता है। साधक संयम, साधना, योग से ही उसे प्राप्त कर सकता है। और एक रहस्य की बात है। मानव-देह में व्यक्त षट्-चक्रों के अतिरिक्त और भी गुप्त तीन चक्र हैं। उनमें ललना-चक्र भी एक है, जो मेरु-दंडान्तर्गत सुषुम्णा के मध्य में ही जीव के कंठ के ऊपर तालु-मूल की समीपवर्ती घंटिका या घाँटी या जीभ-तल के बिलकुल ठीक सामने ही है। वह किन्हीं-किन्हीं के मत से ६४ दल का, किसी के मत से द्वादश दल का है। इसी के मध्य में अमृत-स्थली है। इसी से जीव की रसना में सर्व-विध रस-ग्राहिकता की गूढ़ शक्ति संचारित होती है। उन्नत कोटि के साधक इस चक्र की युक्त साधना में सिद्ध होते ही माता की दन्त-निपीडित लोल-जिह्वा का गम्भीर नया-नया अनुभव कर धन्य हो जाते हैं।

नर-कर-कृत कांची—माता की कटि में नर-करों द्वारा निर्मित अपूर्व कांची वा मेखला विराज रही है। क्रिया-शक्ति का एकमात्र या प्रधान अवलम्बन यन्त्र नर का कर है। वह कटि-देश-स्थित तेज-केन्द्र-स्वरूप माता के मणिपुर-प्रदेश में दृढ़ भाव से आबद्ध है। विश्व की उद्दीपना, साहस और शक्ति सभी सदा से जीव के कटि-प्रदेश में ही विद्यमान रही है। उसके शिथिल या अनाबद्ध रहने पर समस्त शक्ति ही ह्रास या हीन हो जाती है। इसी कारण लौकिक समर के समय में भी वीर गणों को सदा कमर कसने या कमर-बन्दी करने की अनिवार्य आवश्यकता होती है। देवी माहात्म्य में भी वह देवासुर-संग्राम में समर-निष्ठुरता के भाव में माता की यह नर-कर-कांची का भाव पूर्णतः परिलक्षित होता है।

साधक-श्रेष्ठ! तुम नर हो; तुम्हें साधन-समर में गुरूपदिष्ट मणिपूर चक्र को ही प्रथम दृढ़ भाव से अवलम्बन करना होगा तथा कर अर्थात् क्रिया शक्ति को आधार साधन-क्रिया में कटि-बद्ध होना होगा। किन्तु वह साधन बड़ा ही गूढ़ है तथा निष्काम क्रिया सापेक्ष है। इसी कारण कर-समूह सब कटे हुये शव-कर के रूप में दिखाई पड़ रहे हैं। अनधिकारी सर्व-साधारण के सम्मुख अप्रकाश्य हैं। अतः साधक को अत्यन्त गोपन ही में साधना करनी होगी।

लौकिक रूप से छिन्न कर से कामना-विहीन-कर्म के ही द्वारा उसे सम्पन्न करना होगा, अर्थात् बाह्य पूजा-अर्चन, साधन-भजन तथा प्रारब्ध-कर्म-क्षय-रूप लौकिक सकल क्रियाओं के भीतर गुरु-निर्दिष्ट निज देह-स्थित मेरु-दण्ड के गम्भीरतर गुप्त स्थल की ओर निरन्तर लक्ष्य रखते हुये ही उसे पूरा करना होगा। मूलाधारादि साधन-चक्रों की प्रकृत क्रिया वास्तव में भीतर की गम्भीर साधना का गूढ़ विषय है। विश्व की प्रकृति या मातृ-शक्ति-स्वरूप जीव-पिण्ड में जो कुण्डलिनी के रूप में निरन्तर स्थित है; जो एकाधार में स्वयम्भू-लिङ्ग-वेष्टिता होकर जीव की जीवनी-शक्ति होकर ही अति गुप्त भाव से विराज रही है, उसको गुरूपदिष्ट गुप्त साधन-क्रिया द्वारा ही उत्थापन करना होगा।

वह समग्र प्राथमिक साधन-कार्य बाह्यानुष्ठान-रूप स्थूल पूजा-कर्मों के भीतर यत्न-पूर्वक गोपन करने के निमित्त ही मूलाधार से मणिपूर-पर्यन्त तीन चक्रों को मानो निष्काम कर्मों की इन्द्रिय या छिन्न नर-करों द्वारा आवृत रख कर माता मानों गूढ़ साधन-क्रिया की ओर हमें

इङ्गित कर रही है। इसके अतिरिक्त योगोपदेश में भी यह मणिपूर-क्षेत्र 'ब्रह्म-ग्रन्थि' के नाम से कहा गया है।

मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान का कार्य पूरा कर साधक इस नर-कर-वेष्टित अर्थात् तमः और रजः गुण के कर्म के क्षेत्र या 'कुरु-क्षेत्र वा धर्म-क्षेत्र को सन्धि-रूप भीषण ग्रन्थि या गाँठ-रूप ब्रह्म-ग्रन्थि को अतिक्रमण करने को बद्ध-परिकर हो। साधक को प्रथम मणिपुर की चिन्ता कर गम्भीर क्रिया की गम्भीरता का अनुभव कर सावधानी से चित्त-स्थिरता आदि का कार्य-सम्पादन कर साधन-समर में धीरता से अग्रसर होना होगा तथा क्रम से विष्णु-ग्रन्थि तथा रुद्र-ग्रन्थि को भेद कर चरमोन्नति को प्राप्त करना होगा।

विस्फुरितानना—माता के मुखमण्डल का विस्फुरित भाव, घोर रव, महारुद्र भाव—यह सभी साधन-समर में अति विकट असाधारण प्रकृति-विरुद्ध दृश्य हैं। माया से पार पाने के निमित्त स्वभाव के इन विषम या विकट भावों की ओर मातृ-ध्यान में सदा लक्ष्य रखना होगा तथा स्वयं भी आत्मोन्नति में निम्न-मुखी प्रवाहों की ओर भीषण साहस-पूर्ण दृढ़ विकट भाव हो सदा अवलम्बन करना होगा। अवसाद-ग्रस्त होकर संसार-स्रोत में अपने को डुबो देने से क्या लाभ? अत्यन्त सावधानी से कार्य करना होगा। उसकी चिर अभ्यस्त आसुरी वृत्तियाँ कब उसे किस ओर ले जाकर कहां डुबो दें, इसके लिये विरोधी वृत्तियों को दृढ़ भाव से नष्ट करने को ही मा का संकेत है। बहिर्जगत् में जो सावधान होकर कर्म करने का अभ्यासी रहा है, वही अन्तर्जगत् में भी कुछ सफलता प्राप्त कर सकता है। जो सावधानी वा धैर्य से कार्य करने का अभ्यासी नहीं है, वह साधन-समर में कैसे अग्रसर हो सकता है? असावधानी से ही अत्यन्त उन्नत साधक भी साधन-विघ्न-रूप पदस्खलन से कभी-कभी आत्म-घात तक करते देखे गये हैं।

श्मशानालय-वासिनी-श्मशान शब्द का अर्थ है शम=शव, उसका शान=शयन-स्थान, अर्थात् शव का अन्तिम स्थान वा यों कहिये कि प्रारब्ध-कर्म के भोगान्त में जीव या जीव-देह का अन्तिम विश्राम-क्षेत्र, विषय-वासना का विकार-विहीन स्थान, अविद्या-रूप माया की लीला-भूमि या संसार के अनित्य सुख-भोग की वासना से शून्य वैराग्य-भूमि श्मशान है। यहाँ पर आने से संसार के भोगों में मुग्ध हुये मनुष्यों के भी हृदय में क्षण भर के लिये तो वैराग्य का उदय हो ही जाता है।

यहां पर जीव की अभिमान-पुष्ट देह का परिणाम देखकर बहुतों को भी भय भी होता है तथा राजा-प्रजा, धनी-निर्धन, ब्राह्मण-चाण्डाल, उच्च-नीच सभी का निर्विकार समान आसन तथा समान अधिकार और एक ही परिमाण देखकर अपार शान्ति भी होती है तथा आत्म-विस्मृति की भ्रान्ति भी दूर होती है। इसी कारण श्मशान ही इस अनित्य संसार के लय या मुक्ति की स्वरूप-भूमि है। इसीलिये हमारी माता भक्त को मुक्ति देने के निमित्त ही इस नित्य श्मशान के आलय या गेह में आश्रय कर सत्-प्रधान या नित्य महाविद्या के रूप में साधक को अन्तिम लक्ष्य का निर्देश कर रही है। भक्त साधक को शान्ति और वैराग्य के मार्ग से उस नित्य भूमि में आने को सतत आह्वान कर रही है।

महाभूत भी महाप्रलय-काल में शव-रूप से जिसका आश्रय लेते हैं, वही श्मशान कहो अर्थात् ब्रह्म, उसमें रहनेवाली या उसका आश्रय लिये हुये वही श्मशान-वासिनी हुई या ब्रह्म-मयी कहिये। उसी को सर्वदा सुर-गणों से अनुगता जान कर क्रम से उसकी साधना में तत्पर होना चाहिये।

त्रि-नयना—काली त्रि-नयना हैं, क्योंकि भूत, भविष्यत्, वर्तमान सभी उस त्रिगुण-मयी त्रिकाल-दर्शिनी मा के नयन-पथ में सदा प्रतिभात या प्रकट रहता है। ध्यानान्तर ऐसा भी है कि—'वह्न्यर्क-शशि-नेत्रां च रक्त-विस्फुरि-ताननाम्'—माता के नयन-त्रय में विश्व के वह्नि, सूर्य व चन्द्र-रूपी तीनों नयन या ज्योतियां सर्व क्षण प्रदीप्त

रहती हैं। वही क्रम से विश्व की दीप्ति या तेज-स्वरूप प्रथम तथा ज्योति या प्रकाश-रूप द्वितीय तथा शान्ति-रूप में तृतीय भाव-प्रकट हो रहा है। रक्त ही जीव का शक्ति-स्वरूप है। इसी हेतु उसके नयन-त्रय शक्ति-सहयोग से रक्त-वर्ण प्रदीप्त हो रहे हैं। साधारणतया जीव के दो ही नेत्र होते हैं तथा दो नेत्र होते हुये कोई भी वस्तु दो नहीं दिखाई देती। दोनों नेत्रों से देखने पर भी प्रत्येक वस्तु एक ही दिखाई देती है। ब्रह्म का सद्-भाव तथा चिद्-भाव अभिन्न होते हुये भी साधक को जानने के लिये या समझने के लिये दो भिन्न भावों से समझना होगा।

विश्व में सर्वत्र ही सदंश व चिदंश एक ही स्थान में है। जङ्गम-रूप जीव लीजिये या स्थावर-रूप वृक्ष लीजिये; जो भी लीजिये, उसका बहिरावरण स्थूल रूप या सत्-शक्ति-प्रधान है। वह जड़ ही की भाँति है, किन्तु उसके अन्तर में चित्प्रधान जो अव्यक्त प्रकाश-शक्ति विद्यमान है, जिसके द्वारा उसकी पुष्टि या वृद्धि-रूप में क्रम से पत्र-पुष्प पल्लव-फल प्रकट होते हैं, जिससे उसे चैतन्य-युक्त मानना ही होगा। जिसके अभाव में वह मर जाता है, उस चैतन्य सत्ता का स्वतंत्र अस्तित्व उसके जड़ांश में पृथक् भाव से दिखाई नहीं देता, न जीव उसके पृथक् भाव में देखने की बात भी मन में लाता है। इसी हेतु वह दो आँखें रखते हुये भी दोनों से वही अभिन्न वस्तु देखता है। किन्तु साधक का जब इष्ट-गुरु की कृपा से उपनयन होता है—यहाँ उपनयन का अर्थ अतिरिक्त दृष्टि या ज्ञान-दृष्टि है—अर्थात् जब साधक का ज्ञान-चक्षु खुल जाता है, तभी वह ज्ञान-विचार-रूपी तृतीय नयन-द्वारा समग्र लौकिक वस्तुओं के मध्य में जड़-चैतन्य के विश्लेषण-युत सत्-चित् की मिलन सत्ता या विश्व का अलौकिक आनन्द-प्रवाह देखकर धन्य हो जाता है। इसके पश्चात् देही के स्थूल और सूक्ष्म तथा कारण देहों को भी प्रत्यक्ष कर मुक्ति के पथ में और अधिक अग्रसर होता है।

आत्म-साक्षात्कार में प्राथमिक दृष्टि-पथ से भी स्थूल देहाभिमानी आत्मा, विश्व सूक्ष्म देहाभिमानी आत्मा, तैजस तथा कारण देहाभिमानी आत्मा प्राज्ञ—इन तीनों के साक्षात्कार के निमित्त जिन नेत्रों का प्रयोजन होता है, वही साधक का उपनयन या तृतीय नयन या ज्ञान-चक्षु समझो। जीव का ज्ञानाधार मस्तिष्क है। उसका सामने का भाग बुद्धि या विचार का क्षेत्र-रूप विज्ञानमय यन्त्र है। उसी के मध्य में या भ्रूद्वय के पीछे आज्ञा-चक्र के ठीक सामने कूटस्थ विंदु विराजित है। वही विन्दु-स्थल उच्च साधक की दिव्य-दृष्टि का आधार, उपनयन या तृतीय नयन है।

मा दक्षिणा काली है—वह सदा ही साधक को दक्षिण या अनुकूल पथ की ओर अग्रसर होने को इङ्गित करती है। शिव-हृदय पर आरूढ़ हुई वह दक्षिण-पाद को अग्रसर करती है। दक्षिण ही की ओर दन्त-श्रेणी का विकास है तथा उसका मुक्त केश-गुच्छ भी दक्षिणांश में ही झूल रहा है। इसी कारण उसका नाम दक्षिणा काली है। दक्षिण का अर्थ अनुकूल है, यह तो प्रथम ही बताया जा चुका है। अतः साधन के अनुकूल अनुष्ठान को माता का दक्षिण चरण ही प्रारम्भ करता है। इसी दक्षिण का अर्थ दान, त्याग, लय, मृत्यु और वैराग्य भी होता है। भोगाभिलाषी संसार में आसक्त जीव दक्षिण से बहुत डरता है। कारण यह है कि दक्षिण-दिशा ही उसके भोग या सुख का अन्तिम पथ है। उसका स्वामी यम है। उसे यम-द्वार भी कहते हैं।

यम भोगाभिलाषी संसारी जीव को भय का कारण है। तथापि धार्मिक व मोक्षाभिलाषी को उससे कुछ भी भय नहीं, क्योंकि वह धर्मराज भी है। अतः धार्मिक के लिये वह दक्षिण वा अनुकूल भी है। इसका साक्षी नचिकेता का उपाख्यान भी है। माता के दक्षिण चरणाभिलाषी श्री साधक को सर्व-प्रथम वही दक्षिणा देना है। अर्थात् मुक्ति-पथ के लिये परवाना वही देता है। भोग-वासना ही बन्धन का कारण है। वही मनुष्य के जन्म-मृत्यु के स्रोत को भी बराबर अविच्छिन्न रख रही है। त्याग या वासना-त्याग ही वैराग्य है। उसी से जीव संसार-बन्धन से मुक्त होता है। मा दक्षिणा काली के स्वरूप में आपाद-मस्तक आसन-भूषण सभी में एकमात्र दक्षिण अर्थात् त्याग-वैराग्य-आसक्ति-विरक्ति-रूप उपाय का अवलम्बन करने को ही इस अदम्य साधन की ओर इङ्गित कर रही है। साधक को चाहिये कि माता के दक्षिण-चरण का अनुसरण करे तथा माता की कृपा से जीवन्मुक्ति लाभ करे।

विपरीत रतातुरा--रति का अर्थ है आसक्ति या प्रवृत्ति और विपरीत का अर्थ हुआ विपरीत आसक्ति या निवृत्ति। गूढ़ भाव से इसके आशय या रहस्य को हृदयङ्गम करना चाहिये। विपरीत रति अर्थात् आसक्ति-वर्जित होकर चित्त-वृत्ति-निरोध-रूप निवृत्ति-मार्ग में धीरता से चलो। परम पूज्य गुरु-मण्डली का एक और भी रहस्य उन्नत कोटि के साधकों के मनोरंजनार्थ प्रकाशित किया जाता है। जीव प्रकृति की पौरुष गति सतत अनुलोम भाव से प्रवृत्ति मार्ग में निम्न-मुखी वा पतनोन्मुखी तेज या वीर्य-रूप में रहती है। उसे अदम्य साधना द्वारा प्रतिलोम या विपरीत भाव में उन्नत-मुखी या ऊर्ध्व-मुखी करना होगा।

यहाँ पर भी गीतोक्त उस प्रसिद्ध साधन की ओर इङ्गित किया गया है, जिसमें बीज-प्रद पिता या ऊर्ध्व-मुखी त्रिकोणाकार स्वयंभू-लिङ्ग के बीज-मुख या बीज-गह्वर-मय विन्दु के ऊपर ही उक्त कुण्डलिनी-शक्ति का एक प्रान्त रक्षित है तथा महद्योनि का या ब्रह्म-शक्ति का आधार-स्वरूप रजः वर्ण या रक्त वर्ण गर्भ-विशिष्ट निम्न-मुखी वा पश्चात् त्रिकोणाकार-पीठ से उत्थित हुई महत् प्रकृति ही पारदोपम अतीव शुभ्र सार्ध त्रिविन्दु ब्रह्म-बीज या चैतन्य बीज-युक्ता होकर ओज-रूप में अति सूक्ष्म रेखाकार विद्युत्प्रभा-मयी-स्वरूप में सार्ध त्रिवलयाकार या साढ़े तीन लपेटों में उसी लिंगांग या शिवांग में परिवेष्टिता हो रही है, किन्तु उसका प्रान्त या मुख उसी त्रिकोण-मयी योनि-यन्त्र के निम्न या पिछले भाग में युक्त हुआ सुषुम्णा-पथ को रुद्ध किये हुये है। साधक-प्रवर! उसी चैतन्य तेजमयी कुण्डलिनी-शक्ति या जीव की आत्म-जीवनी-शक्ति को इसी विपरीत रति-रूप साधन की प्रतिलोम-क्रिया द्वारा ऊर्ध्व-पथ में उत्थापन कर सहस्रांतर्गत अकुल स्थान में ले जाने को समर्थ होओ। प्रकृत भूत-शुद्धि आदि उन्नत क्रिया द्वारा वह सिद्ध की जाती है। वैदिक सन्ध्या के रुद्रोपस्थान के अनुष्ठान में भी ऊर्ध्व लिंग-भू आदि शब्द गौण भाव से ऊर्ध्व रेखा होने के इसी भाव का इङ्गित कर रहे हैं।

जीव-लिंग स्वभावतः प्रवृत्ति-पथ में अधोमुख या अधोलिंग होकर लौकिक सुखात्मक सतत वीर्य-पान से ही आत्म-क्षय बराबर कर रहा है। इसी कारण मूलाधार-कमलान्तर्गत जीव-भाव-युक्त स्वयंभू-लिङ्ग अधोमुख कहा गया है। गृहस्थ साधक के षट्-चक्रान्तर्गत सभी कमल भी इसी कारण अधोमुख रहते हैं। उन्हें ब्रह्मचर्यात्मक निवृत्ति-मार्ग की अनुकूल साधना-द्वारा कुण्डलिनी-जागरण-रूप अपूर्व क्रिया के सहयोग से ऊर्ध्व-मुख करके जीव-भाव से परे शिव-भाव में प्रवेश कर ऊर्ध्व-लिंग-स्वरूप में परिणत करना होगा। इस भाव को क्रिया-ज्ञान-हीन वाक्य-विन्यास से ही यथार्थतः जानना सम्भव नहीं। हृदय में अविचल सत्य-प्रतिष्ठा ब्रह्मचर्य-पूर्ण योगावलम्बन-द्वारा ही वीर साधक इसे प्राप्त कर धन्य हो जाते हैं।

माता विश्व-प्रसविनी होकर भी एक ही समय में सृष्टि, स्थिति तथा लय करनेवाली है। उसके निम्न अङ्ग में प्रथम स्तर में महायोनि-पीठ में वह ब्राह्मी-शक्ति स्वरूपा सृजन-रता है; मध्य अङ्ग में या द्वितीय स्तर में पीनोन्नत-पयोधर में वह वैष्णवी-शक्ति-रूपा पालन-रता है। तृतीय ऊर्ध्व अङ्ग में या उच्च स्तर में कराल वदन में वह माहेश्वरी शक्ति-रूपा संहार-तत्परा है। वैसे ही यथा-क्रम से इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान शक्ति-रूप में जीव के हृदय में प्रथम प्रवृत्ति, बाद को स्थिति, उसके पश्चात् निवृत्ति शक्ति-रूप में विराजमान है। देवी एक ही वेष में त्रिशक्ति-स्वरूपिणी या त्र्यक्षरी है। अर्थात् साक्षात् प्रणव या सन्ध्या गायत्री की मूलभूता सावित्री, गायत्री, सरस्वती की समाहार-रूपिणी ब्रह्म-शक्ति-स्वरूपिणी है। साधक-प्रवर! कैवल्य-दायिनी माता का 'दक्षिणा कालिका' स्वरूप तन्मय प्राण से ध्यान कर उसमें तन्मय हो तथा दृढ़ भक्ति से जीवन्मुक्ति के पथ पर अग्रसर होओ तथा श्री इष्टदेव-स्वरूप श्री गुरु की कृपा से माता का ध्यान-रहस्य अनुभव कर धन्य हो जाओ।

सच्चिन्मयी माता का स्वरूप जानने का क्रम—सच्चिन्मयी महामाया का यह रहस्य हृदयङ्गम करके इस बार मोक्षाभिलाषी साधकप्रवर! माता के इस सत् स्वरूप के स्थूल ध्यान में उसके चित्-स्वरूप का भी अनुभव करो। एकान्त भक्ति-भाव से चेष्टा करो। भले ही सहसा उसे हृदयङ्गम न कर पाओ, पर श्रद्धा-समेत अभ्यास करते-करते श्री गुरु-कृपा से स्वयं अनुभव कर सकोगे। यह बात शब्दों-द्वारा नहीं बताई जा सकती। एक उदाहरण-द्वारा उसके सम्बन्ध में कुछ कहा जाता है।

आशा है, वह इष्ट-साधना में सहायक होगा।

रात्रि के घन-घोर अंधकार में कहीं भी कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। मुक्त-केशी मा ने मानो अपने अनन्त लम्बित आलुलायित कृष्ण-केशदाम को अनन्त के अंग में फैला रखा है तथा सारा विश्व-ब्रह्माण्ड उन्हीं से छाया हुआ है, प्रकृति निस्तब्ध है। घर के द्वार, गवाक्ष आदि रंध्र भी रुद्ध हैं तथा अपनी यह प्रपञ्चमय स्थूल देह भी मानो अन्धकार-रूप काले वर्ण में बिलकुल डूब गई है। ठीक स्थूल भूत-शुद्धि-क्रिया के अनुभव की भाँति अपनी देह भी अपने नयन-गोचर नहीं हो रही है। जैसे तुम्हारे एक हाथ में एक पंखा है तथा तुम उसे हाँक भी रहे हो। वह पङ्खा तथा उसका हिलाना पहिले तुम्हें यद्यपि दिखाई नहीं पड़ता है, तो भी उसकी क्रिया का तुम अपने अंग में भले प्रकार अनुभव कर रहे हो और यह भी जान रहे हो कि तुम जागे हुये हो तथा तुम्हारा पङ्खा भी चल रहा है।

घोर अन्धकार में स्थूल रूप से कुछ दिखाई न देने पर भी चैतन्य शक्ति की अदृश्य सूक्ष्म सत्ता की अनुभूति में जैसे कुछ भी बाधा नहीं होती। तुम्हारे प्राण का कार्य अर्थात् आकर्षण-विकर्षण तथा तुम्हारे अंग का सञ्चालन तथा तुम्हारे मन का कार्य इच्छा-शक्ति के विकास का कार्य ठीक चल रहा है। तुम्हारी स्थूल देह के स्वरूप की भाँति ही तुम्हारे प्राणादि सूक्ष्म देह के स्वरूप के अनुभव की भाँति माता का स्थूल ध्यान प्रतिपाद्य सत् वा जड़ भावात्मक आनन्दप्रद इस दैवी रूप के मध्य में भी ठीक उक्त न्याय से ही माता की चित् वा चैतन्य सत्ता वा उसके चिन्मय भाव की अपूर्व क्रिया का अनुभव करने की चेष्टा करो। उसके इसी नील कृष्ण विचित्र वर्ण स्थूल ध्यानात्मक अपूर्व रूप के आवरण में भी सर्वत्र दिव्य स्वच्छ आकाशमान दीप्तिमयी नील किरण प्रभा को प्राप्त करो। अपने आवरण-हीन मन के स्वरूप का भी उसके साथ साथ अनुभव करो तथा इसी पवित्र मातृ-भाव के मध्य में उसको एकदम डुबा दो।

वह सच्चिदानन्दमयी महामाया है। उसकी सत्, चित् और आनन्द-रूपिणी तीनों सत्ताओं के मध्य में भी जैसे उसकी प्रकाश-शक्ति का विकाश हो रहा है। उसकी सत्-सत्ता के मध्य में दिव्य देवी-रूप का विकास तथा उसकी चित् सत्ता के मध्य में दिव्य चेतना का विकास और उसकी आनन्द-सत्ता के मध्य में नित्य सुख या नित्य अलौकिक आनन्द का ही विकास हो रहा है।

साधक! वही अमा-निशा के घोर अन्धकार के बीच भी सकल रूप के विलोप करनेवाले उसके उसी घने कृष्ण स्वरूप के बीच भी पहिले चैतन्य-स्वरूपिणी मा की इच्छा, बाद को उसकी क्रिया, अन्त में उसके ज्ञान-चैतन्य का अनुभव कर धन्य होओ। रात्रि में तुम्हारा अंग तथा अंग के बीच में तुम्हारी इच्छा तथा इच्छा के सहित तुम्हारा अंग-सञ्चालन तथा पङ्खा हाँकना तथा अन्त में सबके अनुभव-स्वरूप त्रिविध शक्ति-बोध की नाईं महामाया का स्थूल ध्यान, पश्चात् उसका चिन्मय ज्योतिः ध्यान, अनन्तर उसका आनन्दमय पूर्ण चैतन्य भाव अनुभव करने के निमित्त प्राण-प्रण से गंभीर-भाव से अपने साधन-पथ में धीर-स्थिर और विश्वास-पुष्ट अन्तःकरण से अग्रसर होओ। अवश्य ही समय पर उसकी कृपा प्राप्त कर धन्य-जीवन होओगे।

ध्यान-प्रसङ्ग में षट्-चक्रों की प्रतिलोम-क्रिया का आभास इसी प्रसङ्ग में क्रियावान् साधक की साधना की अनुभूति के अनुकूल गुप्त षट्-चक्र की प्रतिलोम-क्रिया-भाव का भी कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है। भक्तिमान् साधक! एक बार एकाग्र-चित्त से महामाया की इस ध्यान-क्रिया का विलोम-भाव से अनुभव करो।

सर्वप्रथम मूलाधार-चक्र में उसी कुण्डलिनी-शक्ति-स्वरूपिणी माता की दिव्य ज्योतिर्मयी मूर्ति का, जो विपरीत-रतातुरा रहस्य-प्रसङ्ग में कही गई है, ध्यान करो तथा उसका गूढ़ रहस्य इस समय हृदयङ्गम करो। यही साधक की अनिर्वचनीय मूलाधार-चिन्ता है। अनन्तर उसी चैतन्य बीज-स्वरूपिणी दीप्त प्रभा-मयी की दिव्य सत्ता के उद्बोधन-सहयोग से स्वाधिष्ठान तथा मणिपुर चक्रों के भेद करने के साथ-साथ अपनी स्थूल देहात्म-बुद्धि के संक्रमण-पूर्वक अपनी ब्रह्म-ग्रन्थि का भेद करो, अर्थात् सूर्य-किरणों की फैली हुई ज्योति के समान जीव की स्थूल देह अभिमानी आत्मा, विश्व वा उसकी फैली हुई किरणें या प्रभाव, जो विश्व में या विराट् रूप में ब्रह्मा के सृष्टि-भाव में इस स्थूल जगत् में तथा व्यष्टि-रूप में तुम्हारी देह में तथा विषय-पंचक प्रत्येक अणु-परमाणु में जो प्रगट

हो रहा है, उसी का संक्रमण करना या हटाना होगा।

यही साधक का नर का छिन्न कर है--अर्थात् प्राथमिक निष्काम कर्म के आवरण में अपने कटि-देश को असंख्य बाह्य क्रिया-मय करों से आवृत कर अति गुप्त-भाव से पूर्ण करना होगा या गुप्त रूप से सिद्धि प्राप्त करनी होगी।

इसके पश्चात् मणिपुर से साधक उसी चैतन्य सत्ता के उद्‌बोधनपूर्वक अनाहत-चक्र रूप द्वादश दलात्मक आत्म-सूर्य मण्डल के मध्य में निर्वात स्थान में जलती दीप-कलिका की भाँति जीवात्मा-रूप जीव-पुरुष की शक्ति-स्वरूपिणी कुण्डलिनी को संयोग करा दोनों के युगल मिलन द्वारा जीव के अलौकिक प्राणों की प्रतिष्ठा करो। यही साधक-श्रेष्ठ का अति-गुप्त रासोत्सव है—पूर्व सिद्ध की हुई अपूर्व ब्रह्म-ग्रन्थि भेदन-रूप अपूर्व साधना-लब्ध रजोगुण-पुष्ट रं वीज वा रकार जीवनी-शक्ति या कुण्डलिनी देवी इस बार बाह्यात्मक नील घूम्र-समान आनन्द-रस-प्रद विष्णु-ग्रन्थि का आधार होकर साधक का या स्थूल ध्यान-भूमि में वा हृदय-रूपी रास-मन्दिर में अनाहत-चक्र में राधा-रूप से पधार कर विष्णु-माया-स्वरूपिणी माता की दिव्य सत्ता में या त्रिगुणों की साम्यावस्था में त्रिभंगाकार दिव्य रस-स्वरूप पुरुष-प्रवर के साथ मधुर मिलन की झाँकी दिखा रही है।

फिर इसी दर्शन के फल-स्वरूप ओत-प्रोत भाव से जड़ित सत् और असत् प्रकृति भाव-मय दोनों प्रांतों से उस अपूर्व वैष्णवी माया का अनुभव करो। साधक-प्रवर! इससे आदि की सुरासुर-समर की लीला के प्रत्यक्ष विकास-स्वरूप उस देव अंग के वाम-पार्श्व में मूर्तिमान आसुरी संपद्-सम दुष्टों के दमनात्मक सद्यश्छिन्न मुण्ड और उसकी क्रिया शस्त्र-रूप खड्ग और दक्षिण-पार्श्व में मूर्तिमान दैवी सम्पद्-सम शिष्टों के पालनात्मक वर और अभय-मुद्रा प्रत्यक्ष कर उस विचित्र वैष्णवी माया से पृथक् होओ या अपनी अव्यक्त विष्णु-ग्रन्थि का भेद करो।

अब साधक-अपनी-रुद्रग्रन्थ विभेद करने की पूर्व-क्रिया-स्वरूप षोडश-कलात्मक विशुद्ध चक्र के आश्रय-रूप कंठ-देश मुण्डमाला का प्रत्यक्ष स्वरूप पचास-वर्ण-रूपी मुण्डमाला का मूल 'स्वर' तथा उससे उत्पन्न स्थूल नर-व्यञ्जनों के समावेश से पूर्ण पचास ज्ञान-विज्ञान के प्रकाशक मातृका वर्णों का अनुभव करो तथा उसके विकास ही में निगमागम-रूप नित्य ज्ञान की विचित्र माला तथा उसी से निकली हुई शक्ति-स्वरूपिणी रुधिर-धारा की भाँति अविरत ज्ञान-प्रवाह-द्वारा अपना सर्वांग सिक्त हो रहा है, यह प्रत्यक्ष करो। उसी के कुछ ही ऊपर गुप्त ललना-चक्र से उठी हुई रसना या ललज्जिह्वा-रूप वाक्-यन्त्र के गुप्त संयम-स्वरूप दशन-निपीडन द्वारा परिपुष्ट हो अपनी घोर अविद्या या चिर-काल-संचित अज्ञान-आवरण का भेद कर रुद्र-ग्रन्थि को सम्पूर्ण भाव से भेद करने की चेष्टा करो।

यह कर चुकने पर इसके कुछ ही ऊपर आज्ञाचक्र के द्विदल में चन्द्राधार वाम दल से चन्द्र-विन्दु-समन्वित 'ह' वीज स्वरूप उसके नेत्र-कमल का तथा सूर्याधार दक्षिण-दल से सूर्य विन्दु-समन्वित 'क्ष वीज' स्वरूप उसके दक्षिण नयन-कमल का दर्शन करो और उन दोनों की ही पंखुरी-रूप अग्न्याधार वीज-कोष से अग्नि विन्दु समन्वित वा 'लं' वीजात्मक उसके तृतीय नयन-कमल का अवलोकन करते-करते उन तीनो के समन्वय भूत माता के वह्नयर्क शशि-नेत्र रूप दिव्य नयन-त्रय का अवलोकन करो। साधक, इसी ज्ञान-वह्नि-रूप तृतीय नयन के स्वच्छतम सूक्ष्म विन्दु रूप मणि-मध्य में से अपने भी उपनयन या ज्ञान-चक्षु उन्मीलन के निमित्त उसी के चरणों में बारम्बार करुणा-भाव से प्रार्थना करो। तुम्हारा अज्ञान-अन्धकार दूर होकर दिव्य ज्ञान-ज्योति का शीघ्र ही उदय होगा। तब तुम उस विचित्र ज्योति प्रभा का अवलम्बन कर निरालम्बपुरी में अनायास प्रवेश करने को समर्थ होओगे, तब उसी के अन्तर्गत सोमचक्र के केन्द्र से ऊपर को फैली हुई बढ़ी हुई ज्योति मेरु शिखर की भाँति ज्योतिः मण्डल की अक्षर-रेखा का शृङ्ग या चूड़ा स्पर्श कर तदात्मक रूप हो भावतन्मयता प्राप्त कर सकोगे।

यही तुम्हारे मन्त्र-योग की अन्तिम अवस्था है, यही तुम्हारी भाव-समाधि है। महर्षिपातंजलि ने इसकी ओर संकेत कर कहा है-'ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा' ऋत माने सत्य वस्तु का यथार्थ ज्ञान या यथार्थ स्वरूप। भृ अर्थात् धारण करना यहाँ प्रकाश करता है। जो प्रज्ञा योगी साधक को उसकी उसी चिर-काल वांछित वस्तु का यथार्थ या सत्य स्वरूप प्रकाशित कर दे, वही 'ऋतम्भरा' हुई। साधना की इस अपूर्व तथा अव्यक्त भाव-समाधि से परिपुष्ट होने पर मन्त्रयोगी को जो अध्यात्म-प्रसाद प्राप्त होता है, वह वही अनिर्वचनीय प्रज्ञा है। उसी को शास्त्र में अवाङ्-मनस-गोचर भी कहा

गया है। भगवान् सदाशिव ने भी कहा है—

भावेन लभ्यते सर्वं भावेन देव-दर्शनम्।
भावेन परमं ज्ञानं तस्माद्भावालंबनम् ॥

अर्थात् तुम इस अपूर्व भाव का ही सदा अवलम्बन करो। इसी भाव में तुम्हारा सर्वस्व तुम्हें मिलेगा। इसी भाव में ही अभीष्ट देवता-मयी माता के प्रत्यक्ष स्वरूप का तुम दर्शन पाओगे। यही भाव तुम्हें परम ज्ञान के परमोच्च शिखर पर पहुँचा देगा, तुम धन्य होकर कृतार्थता प्राप्त करोगे। स्नेहास्पद! इस बार माता के मुक्त-केश-गुच्छ-समन्वित रूप अपने इस विचित्र वर्ण के सहस्र-दल-कमल के मध्य में अपने इसी भाव में डूब जाओ। उस घोर अंधकार के मध्य में उसकी अपूर्व ज्योतिः-स्वरूपिणी 'काम-कला' को प्रत्यक्ष कर तुम भी उसके अंग में लीन हो जाओ। अपना अहं भाव उसी करुणामयी जगज्जननी महामाया के श्री चरण-कमलों में लय कर दो।

जगत्कारण निर्णय

विश्व का शक्ति बिना और कोई निदान नहीं ॥
प्रकृति बिना और जगत् जीवों का निधान नहीं ॥विश्व०॥१॥
देख लो सूर्य शशी अग्नि मरुत् पृथ्वी जल ॥
जिसमें यह हो न, कहीं ऐसा कोई स्थान नहीं ॥
विश्व का शक्ति बिना० ॥२॥
लोक में यह भी उदाहरण समझ देखो ॥
बिना तलवार किसी काम का हो म्यान नहीं ॥
विश्व का शक्ति बिना० ॥३॥
सृष्टि परमाणु से विष्णु तथा ब्रह्मा तक ॥
देख लो शक्ति बिना कोई शक्तिमान नहीं ॥
विश्व का शक्ति बिना० ॥४॥
कहते यही सांख्य वेदान्त बनाने वाले ॥
तत्वदर्शन में बिना जिनके कोई प्रमाण नहीं ॥
विश्व का शक्ति बिना० ॥५॥
इसके बिना ब्रह्म नहीं, भिन्न न यह है उससे ॥
जैसे प्रभाशून्य कहीं भानु प्रभावान नहीं ॥
विश्व का शक्ति बिना० ॥६॥
लोग जो हठ से भरे और कई निदान कहैं ॥
हे हरि वे बाद करैं व्यर्थ, उन्हें ज्ञान नहीं ॥
विश्व का शक्ति बिना० ॥७॥

शक्ति-कथा

जड़ तथा चेतन सब ही शक्ति के रूप हैं। जड़ वस्तु अपनी शक्ति-प्रकाश के लिये किसी की अपेक्षा करती है, परन्तु चेतन स्वीय शक्ति-प्रकाश के लिये किसी की अपेक्षा नहीं रखती—यही दोनों में भेद है। आब्रह्म-स्तम्ब-पर्यन्त सब ही शक्ति हैं। पराक्रम, तेज, वीर्य तथा सामर्थ्य शक्ति के जड़-रूप हैं और सर्वव्यापक चैतन्य शक्ति का सूक्ष्म रूप है—चिन्मय रूप है। कालिकादि विद्या-समूह महाशक्ति की चिन्मयी मूर्ति है—

"सर्व-चैतन्य-रूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि"।

परमेश्वर की मलादि-असंस्पृष्ट चिच्छक्ति ही चैतन्य नाम से अभिहित होती है—

'चिच्छक्तिः परमेश्वरस्य विमला चैतन्यमेवोच्यते'। स्मरण रखना चाहिये, पराशक्ति परमेश्वर से अभिन्न है।

वस्तु-मात्र ही शक्ति का उद्भूत रूप है। जगदीश्वरी निखिल वस्तुओं में शक्ति-रूप से विराजती है। शक्ति-रहित होने पर पदार्थ की सत्ता नहीं रह सकती। इस कारण कहा गया—

"यच्च किंचित् क्वचिद्-वस्तु सदसद् वाखिलात्मिके। तस्य सर्वस्य या शक्तिः—।"

वैदिक संहिता में उल्लिखित देवताओं में प्रत्येक ही एक-एक शक्ति का आश्रय है। इस शक्ति के प्रभाव से ही उनका देवत्व है। शक्ति-शाली होने के कारण ही देवता मनुष्य के पूज्य हैं। शक्ति के कारण ही अर्थात् शक्ति के विशेष प्रकाश के कारण ही विष्णु, सूर्य, अग्नि प्रभृति देवताओं की इतनी स्तव-स्तुति वैदिक ऋषियों ने की है। साधना-शक्ति वा योग-बल से मानुष भी देवत्व लाभ कर सकता है। जीव-जगत् में भी शक्ति के तारतम्य के अनुसार उत्कर्ष-अपकर्ष का विचार किया जाता है। जो जीव जितना शक्ति-शाली है, उसका प्रभुत्व तथा प्रतिष्ठा भी उतनी ही अधिक है। पशुओं में सिंह की शारीरिक शक्ति सबसे अधिक होने के कारण वह 'पशुराज' आख्या को प्राप्त हुआ है। शारीरिक तथा मानसिक दोनों शक्तियों के अधिकारी होने से ही मनुष्य पशुओं के ऊपर प्रभुत्व कर सकता है।

परमेश्वर अपनी अचिन्तनीय इच्छा-शक्ति के प्रभाव से एक से बहु हुआ। वह अद्वय परमार्थ वस्तु होने पर भी अपने से अभिन्न शक्ति के साहाय्य से बहु रूपों से प्रकटित हुआ—"य एको वर्णो बहुधा शक्ति-योगात्"।

ब्रह्माण्ड के कारणानुसन्धान में प्रवृत्त होकर ऋषिगण कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद तथा यदृच्छावाद का उल्लेख कर अन्त में शक्ति को ही विशेष चरम कारण रूप से निश्चय करने में बाध्य हुये थे। उन्होंने ध्यान-योग से "देवात्म-शक्ति" का दर्शन पाया था।

"ते ध्यान-योगानुगता अपश्यन् देवात्म-शक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्"। (श्वेताश्वतर)।

ब्रह्म की परा-शक्ति अनन्त तथा अपरिमित है। ज्ञान, क्रिया और इच्छा सब ही ब्रह्म की स्वाभाविक शक्ति हैं—

"परास्य शक्तिर्बहुधा च गीयते स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च।"

यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि शक्ति ब्रह्म का स्वरूप है—'साब्रवीत् अहं ब्रह्म-स्वरूपिणी' (देव्युपनिषत्) अर्थात् शक्ति ब्रह्म से अभिन्न है—"सेयं परा-शक्तिः परमेश्वराद्भिन्ना" (तत्त्व-प्रकाश)। भगवान् श्री शङ्कराचार्य ने भी ब्रह्म का 'परिपूर्ण शक्ति' रूप से निर्देश किया है। उनके मत से सर्वज्ञत्व तथा सर्व-शक्तिमत्व ही ब्रह्म का प्रकृष्ट लक्षण है। "सर्व-धर्मोपपत्तेश्च" सूत्र के भाष्य में उन्होंने इसका स्पष्टीकरण किया है। शक्ति-युक्त न होने पर निर्गुण ब्रह्म कुछ भी कर नहीं सकता। आचार्य-चरण श्री शङ्कर ने अपने 'सौन्दर्यलहरी' के प्रारम्भ में इस तत्व की अवतारणा करके कहा है—

"शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।"

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"।

इत्यादि श्रुति तथा "जन्माद्यस्य यतः" इस वेदान्त-वचन में परिपूर्ण ब्रह्म से जगत् सृष्टि कही गयी है। अपरि-

मित शक्ति का आश्रय होने से ही ब्रह्म जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा लय का कारण है।

शक्ति को स्वीकार किये बिना हम सगुण वा सकल ब्रह्म की कल्पना नहीं कर सकते। जिस ब्रह्माण्ड की रचना-प्रणाली मनुष्य-बुद्धि के अगम्य है, उसकी उत्पत्ति-स्थिति लय किसी सर्वज्ञ तथा सर्व-शक्तिमान् पुरुष के भिन्न नहीं हो सकता। वह पुरुष ही ब्रह्म है—

अस्य जगतो मनसाप्यचिन्त्य-रचना-रूपस्य जन्म-स्थिति-भंगं यतः सर्वज्ञात् सर्व-शक्तेः कारणाद् भवति तद् ब्रह्मेति" (शङ्कर-भाष्ये)।

मूलतः पर-तत्व से अपृथक् होने पर भी ईश्वर की अव्याहत कला-समूह वा शक्ति-राशि हमारे पास भिन्न पदार्थ रूप से प्रतिभात होती है—

"एकमेव यदाम्नातं भिन्नं शक्ति व्यपाश्रयात्।
अपृथक्त्वेऽपि शक्तिभ्यः पृथक्त्वेनेव वर्त्तते॥

'केन' उपनिषद् में ब्रह्म-रूपिणी महाशक्ति उमा हैमवती की कथा पायी जाती है। ब्रह्म की परा-शक्ति ही घट-पटादि नाना भावों से प्रकटित होती है। सूर्य-चर्य से आरम्भ कर आकीट-पतंग सब ही परमेश्वर की शक्ति हैं। विशेषतः नित्य-ज्ञान तथा क्रिया उसकी स्वाभाविक शक्ति है। ब्रह्म-सूत्र तथा शंकर-भाष्य में एकाधिक बार शक्ति का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। "शक्ति-पर्यायात्" सूत्र में कर्तृ-शक्ति तथा कारण-शक्ति को कथा रही है। भगवान् श्री शङ्कराचार्य ने शारीरिक भाष्य में वस्तु-शक्ति तथा ब्रह्म-शक्ति इन दोनों शक्तियों को कथा कही है। बीज-शक्ति, दृक्-शक्ति, प्रवृत्ति-शक्ति प्रभृति का भी उल्लेख उन्होंने किया है। मणि-मन्त्र-औषधादि की अलौकिक शक्ति भी आचार्यपाद ने मुक्त-कण्ठ से स्वीकार की है। प्रत्यक्ष दृष्ट सादात्म पदार्थ-समूह यदि इतनी शक्ति के आश्रय हो सकते हैं, तो विश्व-नियन्ता कितना शक्ति-शाली है, इसकी मनुष्य कैसे कल्पना कर सकता है? इस कारण पुराण में भी परमेश्वर "अचिन्त्य-शक्ति" तथा "अलुप्त-शक्ति" कहा गया है—

सर्वज्ञतो तृप्तिरनादि-बोधः स्वतंत्रता नित्यमलुप्त-शक्तिः।
अचिंत्य-शक्तिश्च विभोर्विधिज्ञः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य।

"तदैक्षत"—यह श्रुति भी ब्रह्म के सङ्कल्प वा इच्छा-शक्ति की अभिव्यंजक है। उसकी अव्याहत इच्छा-शक्ति के प्रभाव से तेज, जल, वायु प्रभृति महाभूत-समूह सृष्ट हुये हैं। परमेश्वर सत्य-संकल्प है और उसकी इच्छा अप्रतिहत है। उसकी सिसृक्षात्मिका शक्ति वा प्रवृत्ति ही सृष्टि का मूल-तत्व है। परम पुरुष की अचिन्तनीय शक्ति को स्वीकार किये बिना हम किसी भी रूप से सृष्टि का महा रहस्यावधारण नहीं कर पाते। सृष्टि तथा लय असल में शक्ति-विशेष का आविर्भाव और तिरोभाव मात्र हैं।

बीज के भीतर जैसे वृक्षोत्पादिका-शक्ति अन्तर्निहित रहती है, वैसे सृष्टि से पूर्व परमेश्वर में भी सृष्ट्युपयोगिनी शक्ति अव्यक्त-भाव से वर्तमान थी। सृष्टि शक्ति के प्रकाश वा व्यक्तावस्था से भिन्न और कुछ भी नहीं है। आचार्य-पाद ने इस बीज-शक्ति का दृष्टान्त दिया है।

सत्-कार्य-वाद तथा कार्य-कारण की एकात्मता में भी आचार्य-पाद श्रीशङ्कर ने शक्ति-वाद की व्याख्या की है। कारण तथा कार्य दोनों ही शक्त्यात्मक हैं। शक्ति के सहारे ही कारण कार्योत्पादन करता है। शक्ति-शून्य पदार्थ किसी भी कार्य का कारण नहीं बन सकता—"शक्तिश्च कारणस्य कार्य-नियमार्था नान्या कार्य-कारणाभ्याम्" (शङ्कर-भाष्ये)।

परमेश्वर निखिल शक्ति का केन्द्र है। विश्व के संपूर्ण पदार्थ एक मूल-शक्ति-केन्द्र से अपनी अपनी शक्ति का आहरण करते हैं। अनन्त भावों से अभिव्यक्त होने पर भी ईश्वर की शक्ति का ह्रास नहीं होता। ईश्वर सर्वदा ही परिपूर्ण है। इस कारण कहा गया—"पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।"

बलवान के बल तथा शक्तिमान् की शक्ति परमेश्वर अमित शक्ति के आधार हैं। भगवच्छक्ति-द्वारा प्रेरित होकर ही सूर्य-चन्द्रादि अपने अपने कर्म समाधान करते हैं। चक्षुरादि इन्द्रियाँ भी ऐसी शक्ति के प्रभाव से ही दर्शनादि व्यापार कर सकते हैं—"ब्रह्म-शक्त्याधिष्ठितानां हि चक्षुरादीनां दर्शनादि-सामर्थ्यम्" (शङ्कर-भाष्य बृहदा० ४।४। १८)।

माया भी ब्रह्म की शक्ति ही है। ब्रह्म-शक्ति होने से माया अनिर्वाच्य है। माया-शक्ति को स्वीकार किये बिना ईश्वर को स्रष्टृत्व-सिद्धि नहीं होती—'न हि तया विना परमेश्वरस्य स्रष्टृत्वं सिध्यति, शक्ति-रहितस्य तस्य प्रवृत्त्यननुपपत्तेः" (शकर-भाष्ये)। इस कारण माया सृष्टि-बीज कही गयी है। विद्या वा ब्रह्म-ज्ञान के उदय से यही

माया नष्ट हो जाती है।

कोई कोई आपत्ति उठाते हैं कि पर-देवता की स्त्री-मूर्ति की कल्पना अशास्त्रीय है, परन्तु ऐसी धारणा अत्यन्त भ्रम-पूर्ण है। यद्यपि साधारण मनुष्य परम-पुरुष को पुरुषाकृति ही जानते हैं, पर असल में पर-तत्व लिङ्ग-वर्जित ही है। अथवा पर-देवता के स्त्री-विग्रह को स्वीकार करने में किसी प्रकार दोष की सम्भावना नहीं हो सकती। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि परमात्मा ने अपने शरीर को द्विधा विभक्त करके पति तथा पत्नी-रूप धारण किया था—"स इयमेवात्मा द्वेधा पातयत् ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम" (१।४।३)। मनुस्मृति में भी इसी बात की प्रतिध्वनि पायी जाती है—"द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्। अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः"। परमेश्वर में स्त्रीत्व वा पुंत्व-निबन्धन कुछ भी भेद नहीं होता। वह एकाधार में स्त्री तथा पुरुष दोनों ही है। "शाश्वती विश्व-योनि" परमेश्वर का लिङ्ग-विचार करने का कुछ प्रयोजन नहीं रहता।

अतीत के किस युग से हमारी आर्य-भूमि में शक्ति-पूजा प्रचलित रही है, उसे ठीक-ठीक बता न सकने पर भी, यह तो ध्रुव सत्य ही है कि वेदोक्त उपासना तथा शक्ति-पूजा दोनों ही सम-कालीन हैं। वैदिक सन्ध्या की त्रैकालीन-मूर्तियाँ ब्रह्माणी, वैष्णवी तथा रुद्राणी हैं। शक्ति की उपासना ही गायत्री का चरम तात्पर्य है।

॥ ॐ श्रीः ॥

आदि शक्ति

'नेति-नेति' कह कर रह जाती 'श्रुति' मौन,
'श्री' समेत आठो याम गाती यश 'भारती'।
'शेष', 'चतुरानन' सराहते स्वभाग्य-योग,
आंखें हो निहाल छवि-माधुरी निहारती।
रहते 'पुरन्दर' हैं द्वार-देहली पै पड़े,
'भुवनेश', 'ऋद्धि-सिद्धियां' हैं चौर ढारती।
'शिव' की विभूति है अनादि 'चित्शक्ति' तू ही,
तेरी 'रवि-रश्मियां' हैं आरती उतारती॥